CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुगमन

हिन्दी त्रैमासिकी

सं०-हरिशंकर द्विवेदी "अज्ञान"

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

M/s :

RAGHVENDRA ENTERPRISES.

(*Approved Government Contractors & General Order Suppliers*)

– 5, Jawahar Lal Nehru Road,
Allahabad.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम पूज्य स्वामि दण्डी स्वामि विमलानन्द जी सरस्वती के चरणों में — डा० विद्यासागर एवं डा० श्रीमती गिरिजा राय एवं सम्पादक विभाग द्वारा भेंट ,,

अनुगता

(हिन्दी त्रैमासिकी)

पूर्ण संख्या—१८

जुलाई—सितम्बर, १९८५ ई०

बीजक

□ सम्पादकीय—२ / अपना शहर : बर्बरीक—४ / अज्ञेय से डॉ० राम कमल राय की एक बातचीत—६ / डॉ० देवेश ठाकुर से सुनील कौशिश की लम्बी बातचीत—३७ ।

□ लेख

नाट्यलेखन : कुछ सवाल—डॉ० सत्यव्रत सिनहा—१०/ साहित्य में मूल्य : रमोला रुथलाल—२३ ।

□ कहानी

महिलाएँ : चेखोव—५०/ भूख : ज्ञान प्रकाश विवेक—५४/ डोली : वासुदेव—५९ / अंतहीन : राकेश 'विमल'—७२ / बत्तीसवें वसन्त का पतझड़ : कमलेश भट्ट 'कमल'—७५ ।

□ कविता

डूबती सदी : डॉ० जगदीश गुप्त—९/ एक जिद्दी औरत ; लक्ष्मीकांत वर्मा—३०/ तुम्हारे शब्द : गंभीर सिंह पालनी—८१ ।

□ अस्थायी स्तम्भ

मेम साहब का कुत्ता (एकांकी) : हरिशंकर द्विवेदी 'अज्ञान'—१४/ कलम मेरी और कालम उनका—८२/ पुस्तक समीक्षा—८९ ।

सम्पादक

हरिशंकर द्विवेदी 'अज्ञान'

(संपादन—संचालन—अवैतनिक)

कार्यालय

१०८ / ३ मीरापुर, इलाहाबाद (उ० प्र०)

शुल्क— एक प्रति—तीन रुपये, वार्षिक (चार अंक)—बारह रुपये ।

विशेष—१. किसी भी प्रकाशित रचना के विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा ।

२. पत्रिका से सम्बन्धित कानूनी विवाद इलाहाबाद में ही हल किये जायेंगे ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पादकीय

साहित्य के अधूरे पन्नों को पलटने पर एक दृष्टि बनाना आवश्यक हो जाता है। यहाँ पर 'अधूरे' शब्द का प्रयोग मैं विकास यात्रा का एक अंग मानता हूँ। जब कभी भी मानव-सभ्यता अमानवीय हुई है तब उस देश, काल व परिस्थिति में साहित्यकार मरुस्थल में समा-सा गया या स्वयं दिग्भ्रमित हो गया। समाज को बनाने-बिगाड़ने की सारी जिम्मेदारी साहित्यकार पर ही नहीं होती। साहित्य स्वयं परिवर्तन नहीं कर सकता है लेकिन परिवर्तन के लिए तमाम लोगों को जागृत व प्रेरित कर सकता हैं। प्रमाणस्वरूप कुछ विदेशी साहित्यकार आज भी हैं।

स्वतन्त्रता से लेकर आज तक हमारे देश में, राजनेताओं के द्वारा साहित्यकार प्रेरित हुआ है न कि साहित्यकार द्वारा राजनेता। मूलतः साहित्यकार का अनुगमन राष्ट्रहित में राजनेताओं को करना चाहिए। साहित्य-जगत में यह एक प्रश्न-चिह्न उठता है कि गाँधी, नेहरू, लोहिया या इन्दिरा जी ने किस समकालीन साहित्यकार से प्रेरणा ली? जबकि अधिकांश साहित्यकार इन्हीं राजनेताओं से प्रेरित हुए। ऐसी स्थिति में राजनीति द्वारा पालित साहित्यकार देश के हित के बारे में कौन-सी नई दृष्टि दे पायेंगे? प्रगति का कम्बल ओढ़कर मुक्त कंठ से व्यवस्था का यशगान करने वाले साहित्यकार तथाकथित राजनेताओं के उपग्रह बनकर उनके इर्द-गिर्द घूमते रहे और उनके आलोक से अपने को आलोकित करते रहे। स्वयं में उनका अपना प्रभामण्डल नहीं बन पाया। एक दो अपवादों की बात छोड़ दें। आज देश के कोने-कोने में जो सामाजिक विसंगतियाँ व विकृतियाँ पनप रही हैं, उनको समाप्त करने के लिए साहित्यकार क्यों नहीं राजनेताओं का नेतृत्व करने के लिए सामने आता?

मेरी समझ से विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि कभी भी सामाजिक विषमताओं को मान्यता नहीं दे सकती। स्वस्थ साहित्य मानवता का हितैषी बन सकता है न कि विध्वंसक। इन्हीं शब्दों के साथ आने वाले पन्द्रह अगस्त को देश की अखंडता को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखने के लिए देश के नागरिकों से आपस में सहयोग की अपील करता हूँ। सारे देश-वासियों से मेरा यही आग्रह है कि वे सजग प्रहरी बनकर भारत की गरिमा को हिमालय की तरह ऊँचा रखने के लिए कृत-संकल्प होवें। इस महत्व-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्ण संकल्प को पूरा करने के लिए आयातित विदेशी भाषाओं का मोह त्याग कर राष्ट्रभाषा को अपनी प्रगति का माध्यम बनायें।

जीवंत साहित्य का दृष्टिकोण सदैव रचनात्मक होता है। मेरा इस पत्रिका के माध्यम से हमेशा प्रयास रहा है और रहेगा कि मानवता के संरक्षण व संवर्धन हेतु स्वस्थ साहित्य को राष्ट्रभाषा के हितों को ध्यान में रखते हुए यथासम्भव प्रचारित व प्रसारित किया जाय। आम आदमी और खास आदमी में सामंजस्य स्थापित करना न कि चन्द लोगों के हितों को देखते हुए चन्द लोगों की पत्रिका बनाना। यही आग्रह मैं अन्य लघु पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों से करता हूँ कि वे कुछ खास व्यक्तियों का हित छोड़कर मानवता का हित सोचकर कार्य करें। अपनी इसी विचारधारा को केन्द्र में रखकर यह अंक प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस अंक के प्रकाशन में सर्वश्री शारदा प्रसाद दुबे, श्री महिपाल सिंह और श्री शंकर शरण त्रिपाठी का योगदान उल्लेखनीय है। अनुगमन परिवार इस सहयोग के लिए आभारी है।

श्रद्धांजलि :

भवानी प्रसाद मिश्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपना शहर

इलाहाबाद साहित्य का गढ़ है। यहाँ की मिट्टी में कुछ ऐसी खासियत है कि यहाँ आने वाला, बसने वाला, रहने वाला साहित्यप्रेमी हो उठता है। उसको साहित्य की चिन्ता सताने लगती है। वह कुछ करने के लिए कसमसाने लगता है, कुलबुलाता है। शहर में छाई हुई साहित्यिक जड़ता और नीरसता के वातावरण को तोड़कर सरस और सजीव बनाने के लिए साहित्य क्षेत्र में जमें मठाधीशों और महंथों से टकराता है और अपना दिल लहूलुहान कर डालता है। पर उसकी शहादत को कोई कबूल नहीं फरमाता और उसकी बेचैनी बढ़ती जाती है - 'बेनियाजी हद से गुजरी बंदा परवर कब तलक / हम कहेंगे हाले दिल और आप फरमायेंगे क्या ?' इस अकुलाहट और अपने इर्द-गिर्द फैली बर्फ-सी ठंढी दीवाल को तोड़ने के लिए वह कोई संस्था बना डालता है जिसकी साप्ताहिक / पाक्षिक / मासिक बैठक करके, स्वयं संयोजक / अध्यक्ष बनकर कुछ समानधर्माओं को इकट्ठा कर तालियाँ बजवाकर, वाह-वाही लूटकर वह अपनी भड़ास निकालता है और सोचता है कि वह साहित्य की महान् सेवा कर रहा है (या अपनी सेवा कर रहा है)! कभी-कभी कुछ उत्साही मित्रों के उकसाने से अपनी जेब से खर्च करके कोई कीर्तिध्वजावाहक पत्रिका निकालता है और इस तरह अपनी और अपने मित्रों की छपास को पूरा करता है। लेकिन उसको बड़ा ताज्जुब तब होता है जब साहित्य की इतनी महान् सेवा करने के बाद भी, इतनी उछलकूद करने के बावजूद भी कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। शहर अपने ढंग से कोलाहल करता हुआ, अपनी रौ में समय की शिला पर प्रवाहित होता रहता रहता है। यही कारण है कि अपने शहर के हर मुहल्ले और गलियों में इस प्रकार की संस्थाएँ और पत्रिकाएँ कूड़े के ढेर पर कुकुरमुत्ते-सी उगती और विनष्ट होती रहती हैं। लेकिन इससे साहित्य की महायात्रा और उसके इतिहास में कोई फर्क नहीं पड़ता।

१. ओटन लगे कपास (लघु पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक)

अपने शहर के तथाकथित प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने एक अजीब धंधा अपना लिया है जो आर्थिक दृष्टि से तो बहुत लाभदायक है पर साहित्य, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों और पत्रकारिता की इमेज को बुरी तरह विकृत करने वाला है। ऐसे लोग एक भी पत्रिका निकाल सकते हैं और दो-चार भी! क्योंकि ये व्यावसायिक दृष्टि से बहुत चतुर, विज्ञापनबटोरू और छुटभैये प्रकाशकों के पीछे घूमने वाले तथा पैसे-दो पैसे के लिए अपनी अस्मिता को बेचने वाले होते हैं। सौ-पचास पत्रिका निकाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ली और बाकी पुस्तकाकार कराकर प्रकाशकों की मदद से खुले बाजार में बेच दिया। भाड़ में जाय पत्रकारिता और समाज-दृष्टि—पैसा तो हाथ में आया! ऐसे लोगों के पास कोई दृष्टि नहीं होती, विचार नहीं होता। केवल सुविधा के लिए एक मुखौटा होता है जिसे गाहे-बगाहे लगा लेते हैं और सरे आम साहित्य और पत्रकारिता तथा सामाजिक मान-मूल्यों को रौंदते रहते हैं।

२. अकृतज्ञता का आनंद

एक जमाना था जब अपने देश के लोग सूरज, चाँद, धरती, नदी, पहाड़, पेड़-पौधे से लेकर परमेश्वर, गुरु, माता-पिता, परिवार-समाज सबके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते थे। क्योंकि जीवन के उल्लास व आनन्द का अनुभव कराने में कहीं न कहीं उनकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका थी। आज के जीवन में सब कुछ है पर वह कृतज्ञता का भाव नहीं है। उसका लोप हो चुका है। ये सारे जीवन्त आस्था केन्द्र पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो गये हैं। वैज्ञानिक युग की शुरुआत, समाजवादी विचारधारा और लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ सामंती युग और सामंती मूल्यों का अवसान हुआ। यह युग की माँग थी और ऐसा होना उचित था। पर इसके साथ जुड़े हुए सामाजिक शिष्टाचार के प्रतिमान भी ध्वस्त होते जा रहे हैं, यह चिन्ता का विषय है। जब हम अपने से बड़े (पद, विद्या, बुद्धि या धन किसी भी क्षेत्र में) किसी व्यक्ति का आदर करते हैं, सम्मान देते हैं तो यह आदर-सम्मान उस व्यक्ति-विशेष का नहीं उस गुणवत्ता का होता है जिससे वह जुड़ा हुआ है। समाजवाद या सामाजिक समता का मतलब मात्र इतना ही है कि व्यक्ति / जाति / वर्ग-विशेष पर होने वाला परम्परित अत्याचार और अन्याय समाप्त हो तथा उसकी जीवन-यात्रा वैसी ही सहज और सरल हो जितनी समाज के अन्य सुविधा-प्राप्त समूहों की है। हम सदैव अति की चरम सीमा पर जाते हैं। सामंती युग का अत्याचार व अन्याय जितना जघन्य और घृणित था उतना ही आज के युग का स्वैराचार है। यह सामाजिक सौमनस्य को खत्म करने वाला तथा गुणवत्ता को गिराने वाला होता है। आज की नई पीढ़ी जीवन की अनिवार्य मर्यादाओं पर उत्साह के अतिरेक में आकर निरन्तर चोट कर रही है तथा इसके प्रकाशन में अनुपम आनन्द का अनुभव कर रही है। परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन दिन पर दिन और ज्यादा विश्रृंखलित, दूषित, कोलाहलपूरित और भ्रष्ट होता जा रहा है। विकासशील समाज में अर्थ की प्रतिष्ठा कोई बुरी बात नहीं है, लेकिन जिस ढंग से उसका अनर्थ प्रकट होकर जीवन की अर्थवत्ता को ग्रस रहा है—यह किसी भी जीवित जाति और राष्ट्र के लिए शुभ नहीं है।

३. भानुमती का कुनबा

मेरे एक मित्र शहर के कॉलेज में हिन्दी प्राध्यापक हैं। जवानी के दिनों में

(शेष पृष्ठ ९० पर)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुप्रसिद्ध साहित्यकार 'अज्ञेय' से डॉ० रामकमल राय की एक बातचीत

[सुप्रसिद्ध साहित्यकार 'अज्ञेय' से उनकी मान्यताओं, मूल्य दृष्टि एवं उनके व्यक्तित्व को लेकर डॉ० रामकमल राय की लम्बी बातचीत हुई थी, जिसका कुछ महत्वपूर्ण अंश यहाँ प्रस्तुत है। बातचीत चूंकि टेप नहीं की जा सकी थी अतः सम्भव है कि शब्दशः ज्यों की त्यों न हो परन्तु मन्तव्य में कोई फर्क नहीं है।]–सं० अनुगमन

रामकमल राय : आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में अहं की अभिव्यक्ति बहुत ही प्रबल दिखती है। आपने 'आत्मनेपद' में लिखा है कि आपकी 'प्रवृत्ति अहं के विलयन' की है। इस द्वैत को कैसे समझा जाये ?

अज्ञेय : हाँ, यह सच है कि प्रारम्भ में मेरी रचनाओं में अहं की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। परन्तु यह बात मैं बहुत पहले से ही स्पष्ट रूप से समझ रहा था कि सर्जक को अपने अहं में विलीन कर देने पर ही सही अर्थों में सृजन का अधिकार मिलता है। मैंने आदर्श यही माना था और इसी दिशा में लगातार प्रयत्नशील रहा। दूसरे, लोग यह भूल करते हैं कि व्यक्तित्व में अहं एवं आत्मा की स्थितियाँ भिन्न-भिन्न हैं। ज्यों-ज्यों अहं का विसर्जन होता है, उसी अनुपात में आत्मतत्व से साक्षात्कार होता है। इसे उलट कर भी कह सकते हैं जैसे-जैसे आत्मा से साक्षात्कार होता चलता है सर्जक का अहं विसर्जित होता जाता है। मेरे साथ भी यही स्थिति रही है।

रामकमल राय : यह तो आपकी कविता को लेकर बात हुई। कहानीकार के रूप में आपको इतनी ख्याति मिली, आपकी कहानियाँ इतनी प्रसिद्ध हुई, आपने बहुत-सी कहानियाँ लिखी भी, फिर सहसा हम देखते हैं कि आपने कहानी लिखना बन्द कर दिया। ऐसा आपने क्यों किया ? क्या हिन्दी कहानी के पाठक के साथ यह आपका अन्याय नहीं है ?

अज्ञेय : चाहता तो हूँ कि कहानी अब भी लिखूं। परन्तु मैं अपने को मुख्य रूप से कवि ही मानता हूँ और एक कवि अन्ततः एक काव्यात्मक कहानी ही लिखेगा। जिसे हम आज यथार्थवादी कहानी कहते हैं, उसमें उसकी रुचि नहीं होगी। चाहें तो कह सकते हैं कि यह उसके सामर्थ्य के बाहर है। वैसे, जो बड़ी कहानी याद रह जाती है उनमें एक Poetic vision तो होता ही है। जिन्हें हम यथार्थवादी कहानियाँ कहते या मानते आये हैं, उनमें भी जो बड़ी कहानी मानी जाती हैं, उनमें यह Poetic vision है। चेखव की कहानियों में यह बात है। 'कफन' में भी यह बात है। अब भी मैं सोचता हूँ कि कहानी लिखूं। मेरी कहानी 'कलाकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की मुक्ति' में यही बात दूसरे स्तर पर कही गई है। मेरी कहानियों में कुछ कहानियाँ करुणा की कहानियाँ हैं, जो प्रेम का एक उदात्ततर रूप है। इसलिए कहा जा सकता है कि इनमें भी एक कवि-दृष्टि दिखती है। 'नारंगियाँ' या ऐसी ही कहानियाँ इस प्रकार की करुणा से संसिक्त कहानियाँ है। इनमें यथार्थवाद पर उतना आग्रह नहीं है जितना Human Predicament को पकड़ने की बात है। आज की पक्षधरता मूलक कहानियों की विडम्बना यह है कि इनमें न तो Reality को ही सही अर्थों में पाया या देखा जा सकता है और न मानवीय तत्व की ही पहचान इनसे हो पाती है।

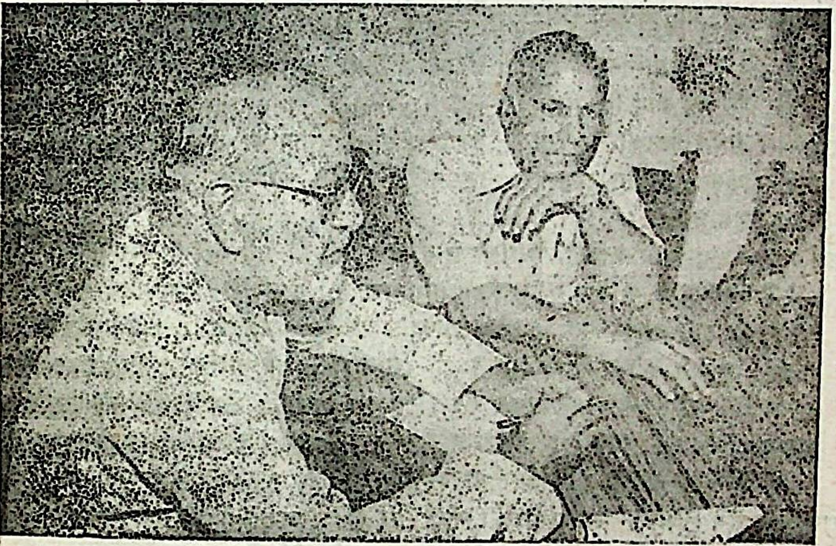

अज्ञेय और रामकमल राय

रामकमल राय : 'आँगन के पार द्वार' में संकलित आपकी कई कविताओं में तथा उसके बाद के काव्य संकलनों में संग्रहित अनेक कविताओं में जो एक नया स्वर दिखता है, एक अपार्थिव सत्य से साक्षात्कार का उसे आप किस रूप में स्पष्ट करेंगे ? क्या यह कोई 'नव रहस्यवाद' है जैसा कुछ लोग कहते हैं या कि जीवन के संघर्षों एवं सच्चाइयों से पलायन ?

अज्ञेय : 'सम्पराय', 'इशारे जिन्दगी के' अथवा 'बड़ी लम्बी राह' जैसी कविताएं नये साक्षात्कार की कविताएँ हैं। वास्तव में मेरे चिन्तन का एक आयाम स्मृति मुक्त, शुद्ध चिन्तन का है। मैं अपने भीतर कभी-कभी Pure time की परिकल्पना कर सकता हूँ, करता हूँ। पुरानी बहुत-सी जिज्ञासाओं का नया आयाम या अर्थ ढूंढ़ना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहता हूँ जैसे 'जीवनमुक्त होना' या 'त्रिकालदर्शी होना'। इन अवधारणाओं (Concepts) को नये ढंग से पकड़ने की कोशिश इनमें है। स्वाभाविक क्रम तो यही है न कि पहले हम तात्कालिक सरोकारों से उलझते हैं फिर धीरे-धीरे उनसे ऊपर उठते हैं। इसमें जीवन से पलायन कहाँ है? यह तो जीवन को उसकी समग्रता में पहचानने का प्रयास है। जीवन के व्यापकतर अर्थ को स्वायत्त करने का प्रयास है। हाँ, मनुष्य इसमें केन्द्र में है।

रामकमल राय : आपकी बहुत-सी कविताएँ रचना-प्रक्रिया पर लिखी गई हैं। क्या यह एक कविता का नया विषय नहीं है?

अज्ञेय : यह सही है कि इस विषय-वस्तु पर हिन्दी में पहले कविताएँ नहीं लिखी गई थीं। परन्तु किसी कवि के लिए तो यह एक जीवन्त प्रश्न है, जिससे वह लगातार जूझता है। कभी-न-कभी तो इस संवेदन को लेकर कविता लिखा जाना था ही। सो; मैंने यह काम किया।

रामकमल राय : आपकी कविता में उदात्तता एवं साधुभाव का दर्शन तो प्रारम्भ से ही दीखता है, परन्तु गुस्सा का तत्व नहीं दिखता। क्या ऐसा सायास है? या कि सहज रूप से?

अज्ञेय : गुस्सा एकदम नहीं है, ऐसा कहना तो सच नहीं है, कहीं-कहीं है, परन्तु कम है। यह सच है कि सायास भी इससे बचा गया है। गुस्सा कोई 'पाजिटिव' तत्व तो नहीं है। बल्कि कवि के लिए समवेदना अधिक 'पाजिटिव' तत्व है। धीरे-धीरे यह बात मेरी समझ में आती गई कि समवेदना ही वास्तव में Positive तत्व है। कविता के बाहर निकल कर इतिहास या धर्म के क्षेत्र में झाँकें तो देख सकते हैं कि गुस्सा जहाँ भी दिखता है, उसका परिणाम Negative ही दिखता है। अच्छे साहित्य में यह नहीं होना चाहिए।

रामकमल राय : आपके उपन्यासों की भाषा पर दृष्टि डालते हैं तो एक निरन्तर बदलाव की स्थिति दिखती है। 'शेखर : एक जीवनी' की भाषा तत्सम एवम् क्लिष्ट है, 'नदी के द्वीप' की भाषा अधिक सहज है और 'अपने-अपने अजनबी' की भाषा में भी एक अजनबीपन-सा महसूस होता है। यह परिवर्त्तन किस दृष्टि से किया गया है?

अज्ञेय : 'शेखर' की भाषा बनती हुई भाषा है। उसमें कच्चापन है और क्लिष्टता भी। 'नदी के द्वीप' की भाषा बेहद सहज और परिपक्व है। दूसरे, इसका पूरा चित्रण Emotional Perspective का है, इसलिए सीधे भीतर तक घुसता है। 'अपने-अपने अजनबी' की भाषा तो बहुत सहज है, परन्तु जिन विचारों को उसमें अभिव्यक्त किया गया है उन्हें हिन्दी का पाठक भी अंग्रेजी में ही पढ़ता और

(शेष पृष्ठ ९१ पर)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डूबती सदी

—डॉ० जगदीश गुप्त

मुक्ति हो या कारा हो
युद्ध हो या शान्ति हो
नेकी हो या बदी।

तेजी से बहाये लिये जा रही है
सब कुछ
वक्र-धार
नियति की नदी।

कगार की तरह
टूट-टूट कर
क्षण-प्रतिक्षण
गिरती हैं मान्यताएँ
भीतर से सार-हीन
ऊपर से लदी।

कैसी विडम्बना है
मानव को—
चाँद पर उतार कर भी
भावी युगों के लिए
बिना कोई तीर्थ बने
समय के सिंधु में
डूबती जा रही है
बीसवीं सदी।

—अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाट्य-लेखन : कुछ सवाल

—डॉ० सत्यव्रत सिनहा

इस समय जब आपके बीच में नाट्यलेखन की समस्याओं पर बातचीत करने के लिए आया हूँ तो यह अनुभव कर रहा हूँ कि मैं इस विषय पर आधिकारिक ढंग से बात नहीं कर सकता—अगर कुछ कर सकता हूँ तो सिर्फ इतना कि आप सबके सामने सोचने के लिए कुछ सवाल—नए या पुराने—फिर से उठा दूँ ताकि इस विचार-गोष्ठी में बात आगे बढ़ सके और मेरी जिज्ञासाओं पर भी कुछ प्रकाश पड़ सके !

हिन्दी रंगमंच के सम्बन्ध में जब हिन्दी नाटकों की चर्चा उठती है तो एक बात अक्सर सुनने में आती है कि हिन्दी में नाटकों का—या कह लीजिए अच्छे नाटकों का अभाव है। नाटक लिखने वालों से बात कीजिए तो वे कहेंगे कि हिन्दी में न तो रंगमंच है और न निर्देशक या प्रोड्यूसर। यह दलीलें अजब-अजब रूप ग्रहण करतीं हैं। अक्सर जिसने एक नाटक लिखा या किसी परिस्थिति ने उससे लिखवा ही दिया तो वह कुछ ही दिनों में एक नाटक संस्था का जन्मदाता बनकर नाटक निर्देशक बन जाता है। अथवा दूसरी ओर वार्षिकोत्सव मनाने वाले बालकों की मंडली ज्योंही नाटकों के अभाव का नारा लगाने लगी त्योंही उसी में से एक ने नाटक लिखा और नाटक लिखकर खेलने की तैयारी करने लगा और अंततः देखते-देखते नाटककार बन गया !!

अक्सर इस सम्बन्ध में मेरी दूसरे नाटक लेखकों से बहुत बार चर्चा हुई है। आखिर वे नये नाटक क्यों नहीं लिखते ? ऐसे नाटक क्यों नहीं लिखते जिनसे एक बार देखने वाले के मन में तहलका मच जाय ? इतना परिश्रम अपनी Script पर क्यों नहीं करते ? मैं यहीं प्रयाग में ही ऐसे लोगों को जानता हूँ जो बहुत अच्छा नाटक लिख सकते हैं—पर वे नहीं लिखते या नहीं लिखना चाहते। शौकिया रंगमंच चलाने वाले बहुत से संयोजक नाटककारों के घर के बीसों चक्कर काटते रह गए पर उन्होंने नाटक लिखकर न दिया तो न दिया। इसका रहस्य उस बेचारे संयोजक को कभी पता भी नहीं चला। शायद उसे पता चलता भी तो वह दुःखी होता।

नाटक को एक शक्तिशाली विधा मानते हुए भी साहित्यकार को जब इसकी छूट मिलती है कि वह चुने कि अपने लिए पाठक चाहता है या श्रोता चाहता है या दर्शक चाहता है तो अक्सर वह पाठक पर ही सन्तोष कर लेता है। चाहता तो यह हैम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि श्रोता भी मिल जाँय और दर्शक भी मिल जाँय लेकिन उसे सन्तोष केवल पाठकों से ही करना पड़ता है। कम से कम उसे अपने पाठकों की ईमानदारी पर भरोसा रहता है और यही विश्वास उसे आगे लिखने के लिए प्रेरणा देता है। हिन्दी में जो नाटक स्वतः लिखे गए हैं वे केवल पाठकों पर ही आधारित हैं और उनसे जो छूटे हैं श्रोताओं के लिए हैं। दर्शकों के लिए लिखे गए नाटकों की संख्या नहीं के बराबर है।

इसका एक कारण यह है कि कोई भी साहित्यकार जब नाटक की विधा को चुनता है तो अपने ऊपर अनेक प्रतिबन्ध एक साथ लाद लेता है। यह प्रतिबन्ध एक बार यदि कलात्मक सृजन प्रक्रिया के नाम पर मान भी लिया जाय तो लेखक एक ऐसी अनिश्चितता के वातावरण में अपने समर्थ श्रम को डाल देता है जहाँ आगे कोई निकास नहीं है। चार महीने या छः महीने की मेहनत अक्सर एक छोटे से सफल या असफल प्रदर्शन की कथा दुहरा कर समाप्त हो जाती है।

जो लिखे हुए नाटक दीख पड़ते हैं उनकी यही विडम्बना है—कहीं स्टेज पर बाढ़ है, तो कहीं शेर बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं, कहीं युद्ध में हाथियों की दौड़ है तो कहीं इससे भी आनन्दकारी दृश्यों को ब्रैकेट में दे दिया गया है। सच तो वे पाठकों के लिए हैं। केवल ब्रैकेट में दे दिए जाने से निर्देशक की परेशानी बढ़ जाती है।

लेकिन नए नाटक दर्शकों के लिए क्यों नहीं लिखे जाते—यह सवाल अभी भी वैसे ही है!

लिखने के पीछे दो प्रेरणाएँ बड़ी स्पष्ट होती हैं—एक तो 'मिशन' या जिसे हम कहें किसी बड़े उद्देश्य या मूवमेन्ट या आन्दोलन के लिए और दूसरे पैसे के लिए।

जहाँ तक 'मिशन' का सवाल है—यह नारा या 'स्लोगन' ऐसे गलत आदमियों के हाथ में पड़ा जिन्होंने तमाम बुद्धिजीवियों को इस नारे के साथ इकट्ठा किया और अपनी ढपली बजाई—चार प्रदर्शन किए, नाटक निर्देशक हुए, इन्फारमेशन डिपार्टमेन्ट में घुस गए, संगीत नाटक एकादमी की ओर दौड़े, अनुदान के पीछे भागे, विदेश जाने का टिप्पस भिड़ाया और 'मिशन' नाम की चीज उन्हीं बुद्धिजीवियों को वापस दे गए! इसलिए किसी रंगमंच के लिए खासतौर से नया नाटक लिखकर तैयार करते समय बहुत से लेखकों के मन में एक शंका घर कर जाती है कि वह 'मिडियाकरों' के कैरियर के लिए कहाँ तक 'टूल' बन रहा है और अक्सर जिसका दुखद नतीजा यह होता है कि नाटक लिखा ही नहीं जाता।

दूसरी प्रेरणा पैसे की होती है। एक बार 'मिशन' से लेखक अनुप्राणित न भी हो तो भी उसकी दूसरी विवशताएँ जहाँ उससे टेक्स्टबुक लिखवा लेती हैं, अनुवाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करा लेती हैं, योजना के पैंफ्लट लिखवा लेती है तहाँ एक 'नीट प्ले' या अच्छा नाटक भी लिखवा सकती हैं। लेकिन ये शौकिया रंगमंच उसे भी नहीं सम्हाल सकता है। शौकिया रंगमंच एक तरह का कैरियर रंगमंच बन जाता है। जब तक कैरियर नहीं बना तब तक रंगमंच ही सही। वह बना और शौक गया। इसीलिए जबकि सेट बनाने के लिए उसे पैसे खर्च करने पड़ जाते हैं, हॉल बुक करने के पैसे देने पड़ जाते हैं, कार्ड की छपाई और ब्रोशर के पैसे देने पड़ते हैं तब वह उस नाटककार से जिसके बल पर वह यह सब तमाशे रच रहा होता है—केवल 'मिशन' की ही बात करता रह जाता है और श्रद्धा या पानफूल के नाम पर दो एक पास देकर छुट्टी पा जाता है। किसी भी तरह यदि लेखक को यह incentive या प्रेरणा मिले कि वह जो कुछ लिख रहा है उसके खेले जाने पर उसकी जिन्दगी का आर्थिक पहलू बहुत कुछ निर्भर करेगा तो वह उसके साथ अधिक जोखिम नहीं उठाना पसन्द करेगा। आज लेखक एक कहानी लिखकर, एक उपन्यास लिखकर या एक काव्य लिखकर अपनी प्रतिष्ठा को बार-बार कसौटी पर चढ़ाता है और उसे करने का जोखिम उठाता है लेकिन वही नाटक लिखकर उसके साथ प्रायः अपनी प्रतिष्ठा को दाँव पर नहीं लगाता।

ऐसा क्यों है—इसे हमारे शौकिया रंगमंच का आन्दोलन चलाने वाले सोचें। आखिर इस तरह की स्थिति को कब तक सहा जा सकता है और उससे समझौता किया जा सकता है? शायद तब तक जब तक हमारे प्रोड्यूसर या निर्देशक 'गिड़-गिड़ाने' की मनःस्थिति से ऊपर न उठ जाएंगे। यही उनकी याचना भरी गिड़गिड़ाहट न केवल उन्हें बौना बना देती है वरन् उनके तथाकथित 'मिशन' के नारे के बारे में भी सन्देह उत्पन्न करती है। यही कारण है कि वे वस्तुतः सही नाटकों को न पकड़ कर उन लम्बकेशरी साहित्यकारों को पकड़ते हैं जिनसे उनका कैरियर भले ही बन जाय लेकिन रंगमंच नहीं बन सकता। ये सब रंगमंच के लिए कभी नाटक बनने देने में रुचि ही नहीं रखते। उनका तो उद्देश्य ही दूसरा है यदि रंगमंच के लिए उचित ढंग के नाटक या Script की आवश्यकता है तो क्यों न हम अपनी मंडली के साथ अपना नाटककार रक्खें—उससे अपने मन की Script लिखवाएँ, कटवाएँ, छँटवाएँ, पात्रों के अनुकूल संवाद लिखवाएँ, पात्रों को ध्यान में रखकर लिखवाएं, एडेप्ट करवाएँ और तब अच्छे से अच्छा प्रदर्शन प्रस्तुत करें। वहीं Script writer धीरे-धीरे यदि शेक्सपीयर बन जाता है तो बहुत अच्छा है और यदि नहीं बनता—जैसा कि बहुत सम्भव है तो भी रंगमंच का आन्दोलन पीछे न जाकर कुछ आगे ही चला जाएगा। आज की स्थिति तो दूसरी है जो नाटककार के रूप में जाना जाता है वह मुख्यतः साहित्यकार है। जो साहित्यकार है उसके बड़े-बड़े Ego हैं, अहम् हैं। वह जो कुछ लिखता है वह सब वेदवाक्य है। उसे कौन काटेगा? जो काटे वह साहित्य की हत्या करे और साहित्य का हत्यारा कभी इस दंड से मुक्ति नहीं पा सकता। यही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण है यह साहित्यकार अपने लादे हुए Ego या अहम् की छाया रंगमंच पर छोड़ना चाहता है—तब वह ऐसे संवाद लिखेगा जिन्हें दो बार सही तरीके से वह खुद नहीं बोल पाएगा, ऐसे संवाद लिखेगा जिनके अतिशय भावुकतापूर्ण हो जाने के कारण दर्शकों में ठहाका लग जाएगा। बन्द अंधेरे कमरे में बैठकर लिखने वाला साहित्यकार अकेले पाठक को भले ही अपने साथ बहा ले जाय लेकिन जहाँ दर्शकों की mass psychology काम करती है तहाँ लहरों के राजहंस में 'नट' के बाल कट जाने की ट्रेजिडी को लोग 'अलकधरी' तैल का विज्ञापन समझते हैं या नाइयों का षड्यंत्र और तब साहित्यकार मुंह देखता रह जाता है, उस वक्त उसकी यह स्नॉबरी काम नहीं आती कि 'मैं तो अपना प्ले भी देखने नहीं जाता।' तब उसे समझ में आ जाता है कि बिना थियेटर में जाए यह नहीं समझा जा सकता कि शब्द किस तरह मूर्तिमान हो जाते हैं और उनका व्यक्तित्व नाटककार से अलग खड़ा हो जाता हो जाता है। रंगमंच के नाट्यलेखन में ऐसे साहित्यकारों का सहयोग कहाँ तक उसे आगे ले जाएगा, यह एक महत्वपूर्ण सवाल है।

जो प्रोड्यूसर भाग्यशाली हैं और किसी न किसी तरह से अच्छी Script पा जाते हैं – उनके क्रियाकलाप उस नाट्यलेख के साथ और भी गुल खिलाते हैं। अक्सर अपने संशोधनों से अर्थ का अनर्थ बनाना उनके बाएँ हाथ का खेल है। बुढ़िया माँ को बूढ़ा बाप बना देने में तो उनका कुछ लगता ही नहीं! नाटक यदि Realism को साध्य बनाकर चलता है तो उसे Naturalism या रूमानी बना देना या क्लासिकल बना देना—यह सब तो उस रचनात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत आ जाता है जिसका वह साधारणतयः नाटक निर्देशन का चार्ज लेते ही आचार्य बन जाता है। यदि यह सब कुछ न कर सका तो हर चीज 'सिम्बालिक' या प्रतीकात्मक हो जाती है इसीलिए पतली दफ्ती का अकेला महल का खम्भा अभिनेता के पैर पटकते ही जब काँपने लगता है तो सारे नाटक की प्रतीकात्मकता हास्यास्पद हो जाती है। इस तरह गहरे अर्थों को व्यक्त करने वाले, मूल्यों को ध्वनित करने वाले नाटकों को मंच पर लाने के लिए जिस पृष्ठभूमि को वांछनीय माना गया है, उससे निर्देशक या प्रोड्यूसर सर्वथा मुक्त ही रहने में अपना कल्याण मानता है। सच तो यह है कि जब तक कोई रंगमंच उस व्यक्ति को आगे के लिए कार्यक्षेत्र की सम्भावना और आर्थिक सुरक्षा का वादा नहीं करता तब तक इस क्षेत्र के अनेकानेक ज्ञान को विकसित करने में कोई लाभ नहीं है। क्योंकि यदि इतना करने के साथ-साथ बाबूगीरी की परीक्षा भी पास करनी ही है तो पहिले वही करनी पड़ेगी। नाटक जिसे लिखना होगा, लिखेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एकांकी

मेम साहब का कुत्ता

हरिशंकर द्विवेदी 'अज्ञान'

पात्र-परिचय

डॉ० सुबोध बहादुर सिंह—प्रोफेसर (आयु ४५ वर्ष)
अलका—प्रोफेसर की आधुनिक पत्नी (आयु ३५ वर्ष)
टामी—काला झबरा कुत्ता
रोमी—नौकर (आयु १८ वर्ष)

[आधुनिक ढङ्ग का ड्राइंग रूम है। फर्श पर सुन्दर रंगीन-कालीन बिछा है। सोफा और सनमाइका का छोटा सा टेबिल जिस पर ऐशट्रे पड़ा है, अच्छे ढङ्ग से रखा है। ट्यूब-लाइट जल रही है। प्रोफेसर साहब जब भी कहीं देश-विदेश माह दो माह के लिए चले जाते हैं, तब उनकी पत्नी अलका, जो आधुनिक विचारों की महिला हैं, अपने ड्राइंग रूम में कुछ-न-कुछ उलट-फेर जरूर करवा देती हैं। यह क्रम शादी के बाद दस वर्षों से बराबर चला आ रहा है। करीब-करीब हर साल दो-एक माह के लिये प्रो० साहब विदेशी विश्वविद्यालयों में जाते हैं। और इधर उनकी पत्नी उनकी अनुपस्थिति में तीन काम अवश्य करती है। पहला-नये ढङ्ग से बाल कटवाती है, आधुनिक ढङ्ग के कपड़े सिलवाती है तथा नये पुरुष मित्र बनाती है। दूसरा—पुराना कुत्ता बेच कर नया कुत्ता खरीदती है और नौकर बदल देती हैं। तीसरा—मकान में विशेषकर अपने ड्राइंग रूम में थोड़ा तोड़-फोड़ कराके, रंगाई-पुताई कराके, सामानों में उलट-फेर करके नये ढङ्ग से सजाती हैं। आधुनिकता से उन्हें विशेष लगाव है। जबकि प्रोफेसर साहब विदेशों में जाकर अपने व्याख्यानों के माध्यम से अपनी पुरानी भारतीय सभ्यता की वकालत करते हैं। हर बार की तरह इस बार भी पति के लन्दन चले जाने पर अलका ने वही तीन परिवर्तनों की पुनरावृत्ति कर डाली। लेकिन इस बार का परिवर्तन पहले से कुछ ज्यादा ही आधुनिक है। इस परिवर्तन में उन्होंने कुछ विदेशी पत्र-पत्रिकाओं का विशेष सहयोग लिया। नया काले रंग का झबरा कुत्ता खरीदा, व नया नौकर रखा। नौकर का पुराना नाम केशव से बदल कर रोमी किया। ड्राइंग रूम का तो आधुनिक ढङ्ग से काया-कल्प कर डाला। शीशे की आलमारियों से प्रोफेसर साहब की किताबें निकलवा कर उसमें खजुराहों की छोटी-छोटी कीमती नग्न मूर्तियों को रखवा दिया। रंगीन दीवालों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर अर्द्धनग्न स्त्रियों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित्रों को शीशे में मढ़वाकर टँगवा दिया। प्रोफेसर साहब की पुरानी तख्त को हटवा कर एक कीमती पलंग लगवा दी। उस पर कीमती स्पंज का गद्दा व सफ़ेद चद्दर हमेशा बिछा रहता है—इसके साथ-साथ अपने शरीर में भी यथा सम्भव परिवर्तन कर डाला। ब्यूटी पार्लर में जाकर नये ढङ्ग से बाल कटवा डाले तथा भौंहों को धनुषाकार रूप दे डाला। पारदर्शी वस्त्रों में अब वह निहायत आधुनिक महिला लगती है। रात के आठ बजे हैं। आधुनिक तौर-तरीकों से संजी-संवरी सोफे पर बैठी काले झबरे कुत्ते को गोद में लिए प्रोफ़ेसर साहब के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। उनके प्रतीक्षा के हाव-भाव से ऐसा लगता है कि जीवन का सबसे कीमती सुख वह आज अपने पति को समर्पित करने वाली हैं।]

अलका : (गोद में बैठे कुत्ते को पुचकारती हुई, कलाई घड़ी देखती है। फिर बड़बड़ाती है) ओफ! इन्तजार की भी कोई हद होती है। ...साढ़े आठ बज रहे हैं ...जनाब की अभी गाड़ी ही नहीं आयी। ...खैर, प्रोफेसर साहब की पुरानी आदत है। जब भी वे विदेश से लौटते हैं......... बिना घंटे दो घंटे वेट-कराये बाज ही नहीं आते।......ही इज टू मच लेजी! ... ...(कुत्ते को पुचकारती है। टामी! आज तुझे पहली बार देखकर प्रोफेसर साहब खुश हो जायेंगे। (टामी जीभ से अलका का मुंह चाट लेता है। वह हल्की सी चपत टामी के मुंह पर प्यार से मारती है।) टामी! तू बहुत शरारती है। मेरे होठों का मेकअप खराब कर दिया। ... वे देखकर क्या कहेंगे? (नौकर को बुलाती है)......रोमी! ... अरे रोमी!

(रोमी का प्रवेश)

रोमी—क्या है मालकिन!

अलका—रोमी, तुम अपनी पुरानी आदतों से बाज नहीं आओगे। तुम से कितनी बार कहा कि मुझे मालकिन न कहा करो।

रोमी—गल्ती हो गई, मेम साहब! अब से मेम साहब ही कहूँगा।

अलका—ठीक है। याद रखो! मुझे पुरानी सभ्यता से सख्त नफरत है।

रोमी—जी, मेम साहब!

अलका—रोमी, देखो! टामी ने जीभ से मेरा मेकअप खराब कर दिया हैं।.......... जरा तौलिया और मेकअप का सामान लेते आओ।......नहीं, तो प्रोफेसर साहब देखकर क्या कहेंगे?

रोमी—अच्छा, मैडम! (अन्दर जाने को मुड़ता है।)

अलका—रोमी, सुनो!

रोमी (पलटकर)—जी मैडम! आपने कुछ कहा?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलका—तुम यहीं रहो ! मैं स्वयं मेकअप ठीक करके आ रही हूँ। (गोद में कुत्ते को लिए हुए ही उठती है।)

रोमी—अच्छा मेंम साहब ! (अलका अन्दर चली जाती है।)

(रोमी, खड़ा-खड़ा कमरे के चारों तरफ निगाह दौड़ाता है।)

रोमी (बड़बड़ाता है।) आग लगे इस फैशन को जहाँ व्यक्ति रोज अपना व्यक्तित्व बदलता हो, कपड़े की तरह।......(कुछ सोचता है, फिर बड़बड़ाता है।)...... एक जिन्दगी वह है जहाँ कफन के लिए कपड़ा नहीं मिलता और............एक जिन्दगी ये है जहाँ कपड़ा तो बहुत है लेकिन यथार्थता के नाम पर सिर्फ थोथापन।

(अलका दरवाजे पर खड़ी सारी बातें सुन लेती है। रोमी का ध्यान अलका की ओर जाता है। वह उसे देखकर थोड़ा सहम जाता है, मानों कोई बहुत बड़ा जुर्म किया हो। अलका अन्दर आकर सोफे पर बैठ जाती है। कुत्ते को गोद में ऐसे चिपकाये हैं, जैसे दूध पीते बच्चे को कोई भारतीय नारी छाती से चिपकाये रहती है।)

अलका—रोमी, एक बात बता !

रोमी—(काँपते हुए)—जी मैडम !

अलका—पहले जहाँ काम करता था, वो मेम साहब कैसी थीं ?

रोमी—वो, कर्नल साहब की पत्नी !......मैडम ! वो बहुत अच्छी थी।

अलका—अच्छी ! किस माने में ?

रोमी—जी मैडम ! वह बहुत सुन्दर और सौम्य थीं...... आपसे बहुत सुन्दर...... लेकिन ......

अलका—(थोड़ा नाराज होते हुए)—लेकिन क्या ?

रोमी—वो फैशन-वैशन के चक्कर में नहीं रहती थीं। मुझे याद है—'एक बार मैंने मैडम कह दिया था, उन्होंने थप्पड़ खींचकर मार दिया था।' उसके बाद।......

अलका—उसके बाद क्या हुआ ?

रोमी—मैडम !......उसके बाद बेटे की तरह मुझे समझाया। समझाने के साथ-साथ स्वयं रोती रहीं।

अलका—बन्द करो, उस फूहड़ औरत की बात। हुंः ! आई हेट सच ए टाइप आफ सोसाइटी !......(रुककर)—रोमी सुनो !

रोमी—जी मैडम !

अलका : यह बात सही है कि तुमने माडर्न सोसाइटी नहीं देखी है। लेकिन एक बात याद रखो, रोमी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोमी : क्या, मैडम ?

अलका : सिर्फ देखो ! आनन्द लो।....लेकिन हैजे की तरह फैलाओ मत, समझे।.... फिर मैं प्रोग्रेसिव विचारधारा की हूँ। समझे !

रोमी : जी, मैडम !

(प्रोफेसर का प्रवेश, साथ में रिक्शे वाला अटैंची और सामान लिए है।)

अलका : (कमरे में खड़े अपने पति की ओर ध्यान जाता है। बैठे ही)—गुड नाइट, प्रोफेसर साहब !

प्रोफेसर : (खाली सोफे पर बैठते हैं) नमस्कार, नमस्कार अलका जी ! (एक बार कमरे के चारों ओर नजर दौड़ाते हैं और फिर अलका को देखते हैं।)

अलका : रोमी ! प्रोफेसर साहब का सामान अन्दर रखवा दो।

रोमी : अच्छा मैडम !

(रिक्शेवाले से सामान लेकर अन्दर जाता है। रिक्शावाला प्रोफेसर साहब से पैसा लेकर चला जाता है।)

प्रोफेसर : (टाई ढीली करते हुए)—कहो, अलका ! तुमने तो कायाकल्प ही कर डाला।

अलका : (बात काटते हुए)—भई, प्रोफेसर साहब ! दो घंटे से आपका वेट करते-करते मैं बहुत बोर हुई।....(शिकायत के स्वर में) आप जब भी विदेश से लौटे हैं, कभी भी समय से नहीं आये।

प्रोफेसर : (मुस्कराते हुए)—भई अलका ! तुम्हारी बातों का भी कोई जवाब नहीं हैं। जरा सोचो। ट्रेन तो मेरे बाप की है नहीं। अब अगर वह लेट आती है, तो इसमें मैं क्या करूँ ?

अलका : मैं आपको थोड़े ही कुछ कह रही हूँ। मुझे तो इण्डियन इनर्टनेस से नफरत है। आखिर लोग टाइम के पंक्चुवल क्यों नहीं है ? पंक्चुवल्टी इज एसेंसियल फार प्रोग्रेस। समझे !

प्रोफेसर : अलका ! बात यह है कि कथनी और करनी में बड़ा फरक होता है।.... किसी काम को कहना आसान है लेकिन करना कठिन है। समझी !

अलका : ओफ ! आप तो हमेशा लेजी इण्डियन्स की वकालत करते हैं। न जाने, आप विदेशों में क्या सीखते हैं ?

प्रोफेसर : (हंस देते हैं।)—मैं विदेशों में सीखने नहीं बल्कि अपनी सभ्यता सिखाने जाता हूँ। समझी !

अलका : हुँः ! ....भारतीय सभ्यता।....जहाँ न रहन-सहन का ढंग है और न बात करने की तमीज।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रोफेसर : तुम्हारे कहने का आशय क्या है ?

अलका : आशय !····अभी मैंने आपको गुडनाइट कहकर विश किया और उसके बदले आपने नमस्कार जैसे सस्ते शब्द से मेरे विश का उत्तर दिया जबकि आप अंग्रेजी के प्रोफ़ेसर हैं।

प्रोफेसर : देखो अलका ! मैं कुत्ता नहीं हूँ जो अंग्रेजी में हर जगह भूंकता चलूं। विश्वविद्यालय मुझे पैसा देता है इसलिए वहाँ अंग्रेजी बोलता हूँ। वैसे मैं भारतीय भाषा व सभ्यता का कट्टर हिमायती हूँ। समझी !

(रोमी का प्रवेश, ट्रे में दो कप चाय और दो गिलास पानी लाकर मेज पर रख देता है।)

अलका : भाड़ में जाय, तुम्हारी भारतीय भाषा और सभ्यता। लो चाय पियो।

(दोनों पानी पीते हैं)

रोमी : (बीच में बोल पड़ता है) मेम साहब !····प्रोफ़ेसर साहब ठीक कहते हैं।

अलका : क्या ठीक कहते हैं ?

रोमी : यही कि हमारी भारतीय सभ्यता बड़ी ऊँची चीज है। जितना बोधगम्य जीवन अपने यहाँ है, उतना अन्य कहीं नहीं है।

अलका : (झल्लाकर) तुम चुप रहो। तुमसे बीच में बोलने के लिए किसने कहा।

रोमी : सारी मैडम !

प्रोफेसर : ठीक तो कहता है। (नौकर की तरफ़ मुखातिब होकर)—बेटा तुम्हारा नाम क्या है ?

रोमी : साहब, केशव ! लेकिन आपके यहाँ मेरा नाम रोमी है।

प्रोफेसर : मतलब ?

रोमी : नौकरी देते वक्त, मेमसाहब की यही शर्त थी कि नाम बदलना पड़ेगा।····वो, तो मैंने बदल दिया लेकिन संस्कार थोड़े ही बदल पाऊँगा।

प्रोफेसर : बेटा ! बात तो ठीक कहते हो।···अच्छा यह बताओ कि कुछ पढ़े-लिखे भी हो।

रोमी : जी साहब ! बी० ए० पास हूँ। सरकारी नौकरी के लिए दो साल तक इधर-उधर भटकता रहा।··· फिर अन्त में समय से समझौता कर लिया।···आखिर जीने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा।

प्रोफेसर : ओह !····देखा अलका ! जीवन इसको कहते हैं।

अलका : हुँः !····तो इसमें हम लोग क्या करें। पढ़े-लिखे लोगों को नौकरी देना, देश का हेडेक है न कि हम लोगों का।

रोमी : मेमसाहब ! आप ठीक कहती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलका : रोमी देखो ! नौकरों से ज्यादा बात करने की मेरी आदत नहीं है। समझे !

रोमी : सारी मैडम।

प्रोफेसर : अलका ! केशव को तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए।

अलका : देखिए प्रोफेसर साहब ! नौकरों को कैसे डील किया जाता है, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। उनके साथ कैसे पेश आना चाहिए''''मैं आपसे अच्छा समझती हूँ। समझे।

प्रोफेसर : भई, मेरे कहने का यह आशय नहीं है। दरअसल केशव''''

अलका : रोमी कहने में क्या आपको शरम आती है ? यह केशव, केशव की रट क्या लगा रखे हैं,—गँवारों की तरह।

रोमी : साहब ! चाय आप लोगों की ठंडी हो रही है।

प्रोफेसर : बेटा ! एक कप और लाओ ! तुम नहीं पियोगे।

रोमी : साहब ! अन्दर है, पी लेंगे।

अलका : शरम नहीं आती।'''नौकर के साथ चाय पियोगे।

प्रोफेसर : भई ! नौकर भी तो आदमी है।

रोमी : साहब ! इस छोटे से मुद्दे को लेकर न परेशान हों। मैं अन्दर जाकर पी लूंगा। ''हाँ मैडम ! टामी के लिए दूध लाऊँ।

अलका : (रूखाई से)—चाय पीकर, इसके लिए प्लेट में दूध और बिस्कुट लेते आना समझे। जाओ अन्दर।''''अच्छा-खासा मूड चौपट कर दिया।

(टामी को सहलाती है।)

रोमी : अच्छा मैडम ! (कहकर अन्दर चला जाता है।)

अलका : (चाय की चुस्की लेते हुए)—लीजिए। आप भी लें न !

प्रोफेसर : (चाय की चुस्की लेकर कप मेज पर रख देते हैं। कोट की जेब से सिगरेट निकालकर एक अलका की ओर बढ़ाते हैं)—लो सिगरेट पियो।

अलका : यह क्या मजाक है ? मैं''''

प्रोफेसर : (सिगरेट जलाकर कश लेने के बाद) विदेशों में तो औरतें सिगरेट भी पीती हैं। (चाय समाप्त करके कप मेज पर रख देते हैं।)

अलका : विदेशों में तो औरतें शराब भी पीती है। क्या आप लाकर देंगे ?

प्रोफेसर : तुम्हें पीने से रोका किसने है ?

अलका : (चाय समाप्त कर कप मेज पर रखती है) हुँः ! जरा-जरा-सी बात पर तो आपका हिन्दुत्व बिकने लगता है। चले हैं, शराब पिलाने !

(नौकर का प्रवेश। एक प्लेट में दूध और दूसरे प्लेट में दो बिस्कुट लाकर मेज पर कुत्ते के लिए रखता है। गोद में बैठा कुत्ता अपना नाश्ता देखकर जीभ लपलपाने लगता है।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोमी : मेमसाहब ! टामी को मुझे दे दीजिए। उसे नाश्ता करा दूं।

अलका : टामी तुम्हारी गोद में नहीं जायेगा। उसे गन्दगी से सख्त नफरत है, समझे! …जाओ अन्दर अपना काम करो।

रोमी : (दुखी होकर)—अच्छा मैडम ! भोजन तैयार करूँ (अन्दर जाते हुए)

अलका : (टामी को विस्कुट तोड़कर खिलाती है) ऐसा करो, पहले हम लोगों को एक-एक कप कॉफी पिला दो। उसके बाद भोजन पर जुटो। (प्रोफेसर की तरफ मुखातिब होकर) क्यों प्रोफेसर साहब ! क्या ख्याल है ?

प्रोफेसेर : ख्याल तो ठीक है। (कुछ सोचकर) अलका ! तुम्हारे अन्दर काफी चेन्ज आ गया है।

अलका : (खुशी से) चेन्ज मस्ट वी एसेन्सियल फार द लाइफ !

प्रोफेसर : (हल्की हँसी के साथ) ऐसा परिवर्तन, जहाँ आदमी को कुत्ते से भी बदतर समझा जाय। घोर अनर्थ ! हे राम !

अलका : (झल्लाकर) इस माडर्न सोसाइटी में राम की क्या जरूरत है ?

प्रोफेसर : आग लगे, तुम्हारे माडर्न सोसाइटी को !…जहाँ आदमी की कीमत कुत्ते के बराबर भी न हो। ओफ !

अलका : (कुत्ते को दूध पिलाती है।) मैं लम्बे अर्से से देख रही हूँ कि आप नौकरों को इतना मुंह लगा लेते हैं कि वह छोड़कर भाग जाते हैं।…नौकरों को हमेशा अदब में रखना चाहिए। समझे !

प्रोफेसर : समझा। उसको इतना दबा कर रखो कि वह कुत्ते से भी बदतर दिखे।

अलका : देखो ! ये बार-बार कुत्ते की रट क्या लगा रखे हो। यह जो मेरा टामी है न; इसे मैं बच्चे से कम प्यार नहीं करती हूँ, समझे !

प्रोफेसर : सारी ! मुझे नहीं मालूम था कि मेरे बाहर जाने पर तुमने कुत्ते को जन्म दिया है। हे भगवान !

अलका : प्रोफेसर ! भगवान-भगवान रटते-रटते तुम पूरे ढपोरशंख बन गये हो। जो चीज आँख से दिखाई नहीं देती, उस पर विश्वास करना निहायत मूर्खता है।

रोमी : मेमसाहब ! आँख पर मत जाइये। आँख तो बहुत जगह धोखा खा जाती है।

अलका : मतलब ?

रोमी : मैं सही बात कहूँगा तो आपको बुरा लग जायेगा।

प्रोफेसर : नहीं रोमी ! बेधड़क कहो। फिर मेमसाहब तो एडवांस हैं, इन्हें यथार्थ क्यों बुरा लगेगा।

अलका : बोलो रोमी ! क्या कहना चाहते हो ?

रोमी : मेमसाहब ! बच्चे का पिता कौन है, इसे माँ के अतिरिक्त दुनिया में कोई नहीं बता सकता ? यहाँ हमारी आँखें जवाब दे देती हैं !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलका : (क्रोध से) जाओ भागो यहाँ से। कुत्ते कहीं के।

(रोमी अन्दर चला जाता है।)

प्रोफेसर : अरे अलका ! तुम यथार्थ से इतना भाग क्यों रही हो ?

अलका : भाड़ में जाये, तुम्हारा यथार्थ।

प्रोफेसर : खैर, छोड़ो इन बातों को। ये बताओ, मेरे विदेश जाने के बाद तुम्हारे दिन कैसे बीते ?

अलका : तुम्हारे न रहने पर, मैं मजे में रहती हूँ। समझे !

(पास पड़े तौलिए से कुत्ते का मुँह पोछती है।)

प्रोफेसर : (कमरे के चारों तरफ निगाह दौड़ाते हैं) अरे अलका ! इन आलमारियों से मेरी किताबें क्यों हटा दी ?...फिर यहाँ पर ये अश्लील मूर्तियाँ रखने की क्या जरूरत थी ? कोई देखेगा तो मुझे क्या कहेगा ?

अलका : तुम्हारे लिए अध्ययन-कक्ष मैंने अन्दर वाले कमरे में बना दिया है। (कुछ रुककर)—एडवांस होने को तुम अश्लीलता समझते हो।...आखिर तुम्हारे दिमाग को हो क्या गया है ?

प्रोफेसर : तुम्हारा एडवांस बनना किसी दिन तुमको गर्त में ले जायेगा। समझी !

(सिगरेट ऐश ट्रे में रखकर दूसरी सिगरेट जलाकर कस लेते हैं।)

अलका : और यह तुम्हारा गँवारों जैसा विचार, देश को किसी दिन गर्त में ले जायेगा। समझे !

प्रोफेसर : तुमसे बहस करना व्यर्थ है।

अलका : मेरे सारे मित्र, मेरे हर कामों की प्रशंसा करते हैं, एक ये हैं कि....। गँवार कहीं के।

प्रोफेसर : (ऐश ट्रे की ओर इशारा करते हुए) तुम्हारे मित्रों ने इस ऐश ट्रे को भी तो विकृतियों द्वारा भरा है।

अलका : तो क्या हुआ ! ऐश ट्रे भरने से कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा।

(रोमी का प्रवेश ! ट्रे में लाये हुए दो कप कॉफी को मेज पर रखकर, हाथ में ट्रे लेकर लौटता है।)

प्रोफेसर : रोमी !

रोमी : जी साहब !

प्रोफेसर : यहाँ कौन-कौन आता है ?

रोमी : साहब ! क्या करेंगे जानकर ! कुछ कह दूँगा तो मेम साहब को बुरा लग जायेगा।

प्रोफेसर : रोमी ! तुम बेधड़क कहो। आज मैं सब कुछ सुनूँगा। समझे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोमी : साहब ! कॉफी पीजिए ! ठंडी हो रही है। छोड़िए इन बातों को।

प्रोफेसर : (क्रोध से, आधी सिगरेट ऐश ट्रे में डालते हैं।) रोमी ! तुम अपने नौकरी की चिन्ता मत करो। तुम साफ-साफ सारी घटनाएँ बताओ।

अलका : प्रोफेसर ! मैं देख रही हूँ कि तुम्हारे और रोमी में कोई अन्तर नहीं है।

रोमी : (क्रोध से)—मेम साहब ! आप जिस रास्ते पर चल रही हैं, वह रास्ता अच्छा नहीं है। (प्रोफेसर की ओर मुखातिब होकर)—साहब ! इनके सारे दोस्त मुझे चरित्र के अच्छे नहीं मालूम होते।...और मेमसाहब उनके साथ....। साहब क्या बताऊं, मुझे कहने में शरम आती है।

अलका : गँवार कहीं का। अरे किसी फ्रेन्ड के साथ दो-एक रात गुजार लेना कोई जुर्म थोड़े ही है।

रोमी : मेम साहब ! अगर आप गाँव में होती, तो आपको लोग पतिता कहते। समझीं।

प्रोफेसर : (गुस्से में) पतिता कहीं की !

अलका : (कुत्ते को गोद में लिए खड़ी हो जाती है।)—यह तुम कह रहे हो ?

प्रोफेसर : (खड़ा हो जाता है।)—क्यों ? क्या मैं नहीं कह सकता ? आखिर मैं तुम्हारा पति हूँ।...मर्द हूँ।

अलका : (कुत्ते को सहलाती हुई)—मर्द !...पति ! ..अपने को मर्द कहते शरम नहीं आती। आखिर तुमने इन दस वर्षों में कौन सी मर्दानगी दिखा दी।... एक बच्चा भी तो नहीं दे पाये !....

प्रोफेसर : (एक झापड़ अलका को मारता है।) नीच कहीं की।

(अलका प्रोफेसर को मारने के लिए हाथ उठाती है, तभी रोमी उनका हाथ पकड़ लेता है।)

अलका : रोमी ! भाग यहाँ से, कुत्ता कहीं का। (हाथ छुड़ाकर, प्रोफेसर की तरफ मुखातिब होती है) प्रोफेसर ! तुमको मैं इस कुत्ते से ज्यादा नहीं समझती हूँ! तुम दोनों की अहमियत मेरी निगाह में टामी जैसी है। समझे ! जाओ यहाँ से। भाग जाओ।...साले, कुत्ते।....मर्द बनते हैं ! हुँः (घृणा से)

(प्रोफेसर और नौकर रोमी अन्दर जाते हैं, टामी अलका की गोद से कूदकर उन दोनों को दरवाजे तक पहुँचाने जाता है। अलका अपनी विजय पर खड़ी-खड़ी अपने द्वारा निर्मित विकृतियों को कमरे में ढूंढ़ती है।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साहित्य में मूल्य

—रमोला रूथलाल

साहित्य में मूल्य के प्रश्न पर अत्यन्त प्राचीन काल से विवाद चला आ रहा है। पाश्चात्य एवं भारतीय कवियों, आलोचकों व आचार्यों ने साहित्य की श्रेष्ठता एवं उसके उद्देश्य पर विचार करते हुए साहित्य में नाना गुणों तथा आदर्शों की उपस्थिति अनिवार्य बताई है और इस तरह उन्होंने साहित्य का मूल्यांकन करने का प्रयास किया। किन्तु इस दिशा में सुचारु एवं व्यवस्थित मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से कार्य पाश्चात्य विचारकों के द्वारा ही हुआ। वर्तमान युग में साहित्य, कला तथा काव्य इत्यादि शब्द समानार्थी समझे जाते हैं। भारतीय परम्परा में साहित्य शब्द 'शास्त्र' के अर्थ में प्रयुक्त होता था। किन्तु ६५० ई० के लगभग हुए भर्तृहरि ने साहित्य, कला तथा संगीत की त्रयी में साहित्य को काव्य का समानार्थक माना है। अतः ई० की सातवीं शताब्दी में साहित्य शब्द काव्य के लिये प्रयुक्त होने लगा था। इसीलिए जब साहित्य-शास्त्र शब्द का प्रयोग किया जाता है तो वह काव्य शास्त्र का भी बोध कराता है।

काव्य को कला मानने के प्रश्न पर विचारकों में मतवैभिन्य दिखाई पड़ता है। पाश्चात्य विचारक हीगेल काव्य को पाँच ललित कलाओं संगीत, चित्र, मूर्ति तथा वास्तु कला में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करता है परन्तु भारतीय चिन्तन धारा में श्री जयशंकर 'प्रसाद' हीगेल के उपर्युक्त वर्गीकरण को दोषयुक्त ठहराते हुए काव्य को कला नहीं स्वीकार करते। वे उन प्राचीन भारतीय शास्त्रकारों से पूर्णरूप से सहमत हैं जो काव्य को विद्या तथा कलाओं को उपविद्या के अन्तर्गत मानते हैं। इस प्रकार वे काव्य एवं कला में एक निश्चित भेद करते हैं। 'प्रसाद' जी के मत में काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका विश्लेषण, विकल्प तथा विज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी काव्य की गणना कला के रूप में नहीं करते। शुक्ल जी का मत है कि हम काव्य को कला तथा सौन्दर्य शास्त्र से सम्बद्ध नहीं कर सकते। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में ६४ कलाओं के अन्तर्गत उपरोक्त शेष चार ललित कलाओं (वास्तु, नाट्य, संगीत, चित्र) का तो उल्लेख है किन्तु काव्य कला का कहीं उल्लेख नहीं किया गया। अतः शुक्ल जी की मान्यता है कि काव्य को कला नहीं माना जा सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके विपरीत डॉ० गुलाब राय, डॉ० श्याम सुन्दरदास आदि कतिपय विद्वान हीगेल के उक्त कला विभाजन का समर्थन करते हुए काव्य को कला मानने के पक्ष में हैं। वे काव्य तथा अन्य ललित कलाओं में गहरा सम्बन्ध मानते हैं। वास्तव में भारतीय तथा पाश्चात्य शास्त्रकारों के कला विवेचन में पर्याप्त विभिन्नता है। अतः किसी एक का आश्रय ले कर दूसरे मत की विवेचना कर दोष निकालना उचित नहीं है। हीगेल ने अपने कला विभाजन में जिस तर्क को प्रधानता दी है उसको देखते हुए उसका वर्गीकरण आज के दृष्टिकोण से पर्याप्त वैज्ञानिक तथा युक्ति सम्मत ठहरता है। इसलिये काव्य को कला की श्रेणी में रखे जाने का विशेष विरोध नहीं है। अधिकांश विद्वान उसके समर्थक हैं। इस तरह जब हम साहित्य के मूल्यों का अध्ययन करते हैं तो साहित्य की दोनों विधाओं गद्य तथा पद्य का अध्ययन एवं मूल्यांकन करते हैं।

साहित्य में मूल्य के प्रश्न पर विचार करने से पहले यह आवश्यक हो जाता है कि यह ज्ञान हो कि मूल्य वास्तव में क्या हैं, और साहित्य में मूल्यों से क्या तात्पर्य है। मूल्य शब्द का समाज तथा मानवीय परिवेश से सम्बन्ध होता है। मूल्य शब्द का प्रयोग मुख्यतः दो स्तरों पर होता है :

(१) अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में

(२) भावात्मक स्तर पर

अर्थशास्त्रीय सन्दर्भ में मूल्य शब्द वस्तु के मूल्य (Price) के अर्थ में विनिमय के एक आवश्यक प्रतिमान के अर्थ में प्रस्तुत होता है। दूसरे स्तर पर मूल्य शब्द का प्रयोग भाववाचक संज्ञा के रूप में होता है। भाववाचक संज्ञा 'मूल्य' (Value) शब्द का प्रयोग सामाजिक, सांस्कृतिक, तथा नैतिक सन्दर्भों में होता है। भाववाचक मूल्यों के अन्तर्गत उपयोगिता का पक्ष भी सम्मिलित रहता है। व्यवहारिक मूल्य जैसे सेवा, प्रेम, सहयोग आदि गुण भाव वाचक मूल्यों के अन्तर्गत आते हैं।

राजनैतिक, सामाजिक व नैतिक सन्दर्भों में आगे चलकर साहित्य और अधिक विस्तृत रूप धारण कर लेता है जिसमें यह भाव मूर्त्त-अमूर्त्त में परिवर्तित हो जाते हैं। जब अमूर्त्त ऊँचे स्तर पर प्रकट होता है तब एक नये मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य की अवधारणा होती है। इन्हीं आध्यात्मिक मूल्यों के निकट रचनात्मक एवं कलात्मक मूल्य आते हैं। इनके आधार पर साहित्य की श्रेष्ठता का माप नैतिक तथा सामाजिक आधार पर होता है, अर्थात् सामाजिक व नैतिक उच्च आदर्शों-सन्दर्भों से जोड़ना ही साहित्य का मूल्य है। धार्मिक या सांस्कृतिक मूल्य अलग होते हैं किन्तु कभी-कभी कोई विचारक या लेखक इनमें साम्य भी प्रस्तुत करता है।

साहित्य शास्त्र में मूल्य शब्द समाज कल्याण वाले व्यापक हित तक ही सीमित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है अन्यथा सभी धर्म ग्रंथ श्रेष्ठ साहित्य की श्रेणी में रखे जाते। बहुधा ऐसा होता है कि साहित्य में वर्णित घटना या व्यक्ति नीति सम्मत नहीं होते किन्तु फिर भी उसका अपना मूल्य होता है। दुष्यन्त का शकुंतला को छोड़ देना या भुला देना अच्छी बात तो नहीं परन्तु उसी घटना से शाकुंतल का मूल करुण स्वर उभरता है। यहीं पर शिव और सुन्दर में द्वन्द्व उत्पन्न होता है।

कुछ विचारक केवल सौन्दर्य को ही अन्तिम सत्य मानकर चलते हैं। नीति प्रचारक शिव को तथा वैज्ञानिक व यथार्थवादी निरे सत्य को ही मानते हैं।

प्रत्येक मानव की एक व्यक्ति इकाई होती है। अतः उसके कुछ अपने मूल्य होते हैं। परन्तु मनुष्य एक विशाल भावना विशाल मानव समाज का, परिवार नगर का, प्रत्येक राष्ट्र या संसार का नागरिक और सामाजिक विशेष होकर सामान्य अंग भी है। अतः उसके जीवन के प्रत्येक अंग, विचार-कल्पना में मूल्य का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। परिवार के अन्तर्गत व्यक्ति अपने परिवार के अन्य जनों के साथ या अकेला रहता है। परिवार का वातावरण उसके चरित्र के निर्माण में बाधक या साधक बनता है। यही परिस्थितियाँ उसकी साहित्यिक अभिरुचि, शिक्षा, संस्कार आदि को निर्मित करती हैं। इन्हीं में से एक विशिष्ट प्रकार की मूल्य संहिता का निर्माण व्यक्ति करता है। वह उसके साहित्य निर्माण व साहित्य तिथि को निश्चित करती है। इन मूल्यों की टकराहट परिवार से बड़े जाति, मुहल्ला, नगर, समाज, राष्ट्र या भाषा-दल या अन्य प्रकार के गुटों की संस्थाओं के मूल्यों से होती है। व्यक्ति यहीं बनता-बिगड़ता है। उसके साहित्य मूल्य भी उसी मात्रा में बनते व बिखरते रहते हैं। मानवीय मूल्य अन्ततः साहित्य में विवेक को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

ऐसा भी पाया गया है कि बहुत से असामाजिक जान पड़ने वाले व्यक्तियों ने भी श्रेष्ठ साहित्य की रचना की है। अनेक अच्छे लेखक दलगत मूल्यों के कारण संकुचित रह गये। उनके लेखन का नयापन प्रायः नष्ट हो गया है या फिर उभर नहीं पाता है। दलीय मूल्य स्वतन्त्र विचार या कल्पनात्मक सृष्टि के शत्रु हैं। आज साहित्य में एक यही मान्यता दृढ़ होकर आई है कि व्यक्ति मूल्य ही प्रधान है जो सामाजिक मूल्यों के विरोधी न होकर उसके पोषक होते हैं, वे ही सच्चे मानव मूल्य भी हैं।

साहित्य में मूल्य सम्बन्धी विवाद के मूल में प्रमुख रूप से दो मत हैं जिनका प्रतिपादन उनके समर्थक विश्व भर में कर रहे हैं। विचारकों का एक वर्ग कला को कला के लिये मानता है और उसे जीवन से अलग करके देखता है जबकि दूसरा वर्ग कला को जीवन के लिये मानकर इसे जीवन को शनैः-शनैः उन्नत करने का आवश्यक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हीनहीं अनिवार्य माध्यम मानता है। अनेक विचारक समय-समय पर अनेक उद्देश्यों को लेकर सामने आते रहे हैं पर उनके द्वारा निर्देशित उद्देश्यों का समाहार उपर्युक्त दो प्रमुख मतों के अन्तर्गत ही हो जाता है।

कला अथवा साहित्य उत्तमोत्तम विचारों का समूह है। इसके विभिन्न प्रयोजन एक दूसरे से नितान्त भिन्न नहीं हैं, फिर भी इसमें दृष्टिकोण की भिन्नता है। इन प्रयोजनों का विश्लेषण करने से दो वर्ग हो जाते हैं —आत्मने, परस्मै। यदि कला अपने लिये है तो फिर चाहे वह 'यश से हो या अर्थकृते', विनोद विश्राम के लिये हो या सृजन की अदम्य वृत्ति की परितृप्ति के लिये। स्वान्तःसुखाय हो या जीवन की यथार्थता से दूर भागने के लिये, यदि कला दूसरे के लिये है तो चाहे वह 'व्यवहार-विदे' हो या सेवा के लिये अथवा जीवन के लिये, इन दो वर्गों में से कौन-सा युक्ति-युक्त एवं उपादेय है इस विषय पर पर्याप्त तर्क-वितर्क है। दोनों वर्गों के अनुसार उसके अनुयायी अपने मत की समीचीनता प्रमाणित करने के लिये खींचा-तानी मचाये रहते हैं।

साहित्य के उद्देश्य को लेकर जिन दो दलों का सूत्रपात हुआ है उनमें से एक तो कला को शुद्ध कला की दृष्टि से तथा जीवन से असम्बद्ध मानता है। जबकि दूसरा कला को जीवन के लिये मानकर उसे जीवन को उन्नत सदाचारपूर्ण एवं स्वस्थ्य बनाने का अनिवार्य माध्यम बतलाता है। दूसरे वर्ग के कुछ समर्थक कला का नीति और उपयोगिता से सम्बन्ध जोड़ते हैं, पहला वर्ग जिसे सर्वथा अस्वीकार करता है।

'कला कला के लिये' वाली विचारधारा का पोषण फ्रांस में हुआ। जिसका प्रयोजन केवल आनन्द और मनोरंजन प्रदान करना था। फ्रांस के पश्चात् इंगलैण्ड में इस मत ने लोकप्रियता प्राप्त की।

साहित्य का एकमात्र लक्ष्य आनन्द है, मनोरंजन है। जीवन से, जीवन की इच्छाओं तथा बन्धनों से पलायन है। कालिदास ने दुष्यंत के द्वारा ठीक ही कहलवाया है कि 'इच्छा की तृप्ति और प्रतिष्ठा जीवन की सारी उत्सुकता को नष्ट कर देती है और फिर केवल क्लेश ही क्लेश रह जाता है।' ऐसे लोग जीवन के यथार्थ से दूर भागते हैं और इस पलायन को ही वे कला में ढूंढ़ते हैं।

प्लेटो काव्य को समाज सुधारक के दृष्टिकोण से देखते हैं अतः उनकी दृष्टि से काव्य को लोक-मंगलकारी विशेष गुणों से युक्त होना अनिवार्य है। प्लेटो के शिष्य अरस्तू काव्य का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि काव्य का विशिष्ट उद्देश्य आनन्द है पर यह आनन्द नीति सापेक्ष होना चाहिये।

लोंजाइनस काव्य को शिक्षक, आह्लादकारी तथा चरमोल्लास प्रदान करने वाला मानते हैं। कुछेक भारतीय आचार्यों ने भी काव्य का मूल प्रयोजन आनन्द को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माना है क्योंकि वह रसास्वाद का फल या पर्याय है तथा उसमें और सब इस प्रकार का ज्ञान विलीन हो जाता है—

सकल प्रयोजन मौलिभूतं समनन्तरमेव
रसास्वादन समुद्भूतं विगलितवेद्यान्त स्मानन्दम्।

(मम्मट—काव्य प्रकाश (१/२ की वृत्ति)

'आचार्य वामन ने काव्य को दो प्रयोजनों में बाँटा है। प्रीति (आनन्द) और कीर्ति जो मरण के पश्चात् भी रहती है।

'काव्य सद्दृष्टादृष्टार्थ प्रीति कीर्ति हेतुत्वात'

(काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, १।१।५)

ब्रेडले ने कविता को नीति, धर्म, सदाचार और लोक-कल्याण आदि की भावनाओं से सम्बद्ध मानने वाली प्रत्येक विचारधारा का कट्टर विरोध किया। ऑस्कर वाइल्ड भी इसी विचार के समर्थक हो कला को अनुपयोगी ठहराते हैं। उनके मत में "समालोचना में सबसे पहली बात यह है कि समालोचक को यह परख हो कि कला तथा आचार के क्षेत्र पृथक् पृथक् हैं।" क्रोचे ने केवल 'अभिव्यक्ति' को कला माना। वह वस्तु का कोई महत्व ही नहीं मानता। अभिव्यक्ति के लिये जीवन की झलक परमावश्यक है। अतः जीवन के परे अभिव्यक्ति का कुछ अर्थ ही नहीं होता। फ्रायड ने कला में कलाकार की अतृप्त वासनाओं की छाया होने का प्रतिपादन किया है। क्या इस आनन्द का मनुष्य के लिये कोई मूल्य नहीं है? फ्रायड लिखता है "कला हमें जीवन की कठिनाइयों से कुछ देर के लिये विश्राम देती है, एवं हमें साहित्य कुछ देर के लिये कटुता एवं संघर्ष से परे एक ऐसे आनन्द के आलोक में ले जाता है जहाँ हमारे तन-मन-प्राण जुड़ा जाते हैं।"

कला के नाम पर जहाँ काव्य में कामुकता तथा विलासिता को उद्दीप्त करने वाले चित्रों की सृजना होती है, वह उसका विकृत रूप है। गोस्वामी जी का, वाल्मीकि का साहित्य स्वान्तःसुखाय है। कला के अर्थ का शुद्ध स्वरूप भारतीय स्वान्तःसुखाय ही में मिलता है। जो काव्य को अर्थ और यश के बाह्य प्रलोभनों से परे बतलाता है किन्तु यह कला को नीति से विच्छेद कर देता है। वास्तव में कला को नीति से विच्छेद करना उसको संकुचित बनाना है। इस सम्बन्ध में मैथिलीशरण गुप्त की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।'

(साकेत पृ० २६)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कला को उपयोगिता से परे माना हैं। किन्तु वे उसका मंगल के साथ समन्वय करते हैं। आत्म-मंगल पर मंगल के साथ अनुस्यूत है और पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मंगल बिना आत्म-संकोच के सम्भव नहीं है अतः नीति को सौन्दर्य का व्यापक रूप बनाने के लिये आत्म-संकोच आवश्यक है। 'प्रसाद' की सदैव चिर साध रही—

'ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे-धीरे।
निश्चल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनि रे।

किन्तु साहित्य हमें केवल मदिरा की तरह मनोरंजन ही नहीं देता वह मात्र छलावा, भुलावा अथवा जीवन से पलायन नहीं है अपितु आत्मा को स्वास्थ्य भी प्रदान करता है। 'कला कला के लिये' की वास्तविक उपयोगिता यही है कि वह कला द्वारा जीवन को सदाचार से पुष्ट करे। जबकि इस मत ने अपनी गलत व्याख्या कर ली है। कला द्वारा समाज व्यवस्था में सहयोग, समाधान, सामर्थ्य, समृद्धि और सुसंगठन का संगीत भर जाये। काका कालेलकर ने लिखा है कि "सर्वोच्च आनन्द का स्वाद जिसने चख लिया, उसके लिये सदाचार स्वाभाविक या सहज बन जाता है।" कला का उद्देश्य जीवन से पीठ दिखाकर भागना नहीं वरन् उसके द्वारा जीवन के गहन वन में प्रवेश कर उसमें सौन्दर्य के दर्शन करना है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत पृथ्वी के कण-कण में सौन्दर्य देखते हैं—

'इस धरती के रोम-रोम में, भरी सहज सुन्दरता,
इसकी रज को छू प्रकाश बन मधुर विनम्र बिखरता।'

युगवाणी (मानवपन, पृ० १७)

कवीन्द्र रवीन्द्र भी इसी भाव को अपनाते हैं—

"वैराग्य साधने मुक्ति, से आमार नय।
असंख्य बन्धन माझे, महानन्दमय लगिब मुक्तिर स्वाद॥"

(गीतांजलि—गीत ७३)

वर्ड्सवर्थ काव्य का लक्ष्य एकमात्र आनन्द ही नहीं मानते अपितु काव्य सत्य और सौन्दर्य के माध्यम से आनन्द प्रदान करता है इसके विपरीत टालस्टाय कला को मानव एकता का साधन मानते हैं—'कला आनन्द नहीं हैं, वरन् मानव एकता का साधन है, जो मानव एकता को सह-अनुभूति द्वारा परस्पर संवर्धित करती है।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार कविता मनुष्य को हृदय के स्वार्थ सम्बन्धों से और उसके संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य की भावभूमि पर ले जाती है। जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे व्यक्ति को कुछ काल के लिये अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है। (चिन्तामणि पृ० १४१)। शुक्ल जी ने काव्य का उद्देश्य मात्र चमत्कार एवं मनोरंजन नहीं स्वीकारा है। सहृदय सहानुभूति में तल्लीन हो जाय, काव्य का यही चरम लक्ष्य है। भाव कविता की कसौटी है। भावहीन कविता निकृष्ट कोटि की समझी जाती है। हिन्दी में केशवदास आचार्य पद के अपरिमित गुणों से पूर्णरूपेण विभूषित होते हुए भी इसलिये यथोचित आदर न पा सके क्योंकि उनमें सहृदयता का अभाव था। सहृदय कवि भावों के मंजुल आधार के सम्बल पर अपने भावों को सार्वभौमिक बना देता है। उसके भाव सबको अपने लगते हैं। भावों की इसी महत्ता का प्रतिपादन गालिब इन शब्दों में करते हैं—

देखना तकरीर की लज्जत कि जो उसने कहा
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है।

किसी भी चीज की अति सर्वत्र वर्जनीय मानी गई है। कविता में प्रयुक्त होने वाली कल्पना के लिए यह कथन सत्य है। हिन्दी में बिहारी का अधिकांश विरह वर्णन ऊहात्मक होने के कारण चामत्कारिक भले ही बन गया हो पर वह प्रभावशाली नहीं रहा है। अतः कविता में कल्पना का प्रयोग संयत होकर करना आवश्यक है। कला को जीवन के लिए मानने वालों नें एक खतरे से सबको सावधान किया है। वह खतरा था—कला को उपदेशों, नीति तथा सदाचारपूर्ण आख्यानों का भण्डार बना देना। मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य और नीति तथा सदाचार के सम्बन्ध पर सदैव इस बात का ध्यान रखा कि काव्य में इन्हीं की अति न रहे। इनका व्यक्तीकरण इस रूप में हो कि काव्य अपना इच्छित प्रभाव उत्पन्न कर दे और कोरा-कोरा उपदेशात्मक भी न प्रतीत हो। मार्क्सवादी भी इसी विचारधारा के समर्थक हैं। कला को जीवन के लिए न मानने वाली विचारधारा अत्यधिक भ्रामक और दोषपूर्ण है। जो कला जीवन को उन्नत करने का माध्यम नहीं बन सकती जो लोक की पीड़ा को अपने में मुखरित नहीं कर सकती जो एक स्वस्थ जीवन के संकेत नहीं दे सकती जो मानव-जाति की प्रगति का पथ नहीं प्रशस्त कर सकती वह कला आज के युग में सर्वथा हेय है। अपने युग में भी उसका कोई विशेष महत्व नहीं आँका जा सकता। जो साहित्य मानव-मूल्यों को महत्व न देकर मानवीय व्यक्तित्व के विकास में सहायक नहीं होता है और साथ ही कुण्ठाजन्य निराशा एवं घुटन के वातावरण का विच्छेदन कर चिरन्तन सत्य की स्थापना की प्रेरणा नहीं देता, वह साहित्य व्यर्थ तथा मूल्यहीन होता है। सूर, तुलसी, कबीर, प्रसाद, शेली, मिल्टन, ह्यूगो, टाल्सटाय, गोर्की आदि की कृतियाँ इसी कारण अमर हैं कि वे मानव की उपर्युक्त इच्छा की प्रतिकृति हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लम्बी कविता

एक ज़िद्दी औरत

—लक्ष्मीकान्त वर्मा

आज सुबह-सुबह / एक हेलीकोप्टर घुरहू के खपड़ैल वाले मकान पर / वह निहायत ही शाहिशाना अन्दाज़ में उतरी / सारे छप्पर के ठाठ चरमरा गये / छाजन बैठ गई / घुरहू को लगा—औरत नहीं / कोई देवी प्रकट हो गई है / वह अपने फूटे लोटे में पानी, लौंग, कपूर लेकर दौड़ा / देवी को धार चढ़ती है / इसलिए उसने अपना कफ़न बेचकर लौंग ख़रीद रखा था / जाली नहीं असली जापानी कपूर भी बच्चे की तावीज़ गिरवी रखकर मंगवाया था।

औरत ज़िद्दी थी / उस फूहड़ किसान की इस गुस्ताख़ी से नाराज़ हो / उसने सारा गाँव ही उजड़वा दिया / घुरहू को पकड़वाकर कैद कर लिया / फूटा लोटा और धार का जल, लौंग कपूर / सब का सब उसने नीलाम करवा दिया / पूरा गाँव उसने अपने नादान बेटे को / घरौन्दे बनाने के लिये दे दिया / बहुत देर बाद पता चला—/ वह ज़िद्दी औरत घुरहू पर इसलिये नाराज़ थी / कि उसने पानी की धार क्यों चढ़ाई / लोगों ने कहा—"खून उसके जिस्म में नहीं था" / "तो क्या हुआ खून की जगह पानी बहाना जुर्म है" / घुरहू आज भी जेल में है / उसके घर का टूटा छप्पर छाजन पुरातत्व विभाग ने ले लिया है / लेकिन फिर भी घुरहू के छप्पर पर हेलीकोप्टर वैसा ही का वैसा विराजमान है।

ख़बर हमेशा आग-सी फैलती है / और बदबू की तरह गन्दीली अफ़वाहें बिखेरती हैं / उस ज़िद्दी औरत के पहुँचने की ख़बर शहर में पहुँची / सुबह-सुबह सहसा कलईनुमा शक्लों की भीड़ / घुरहू के घर के इर्द-गिर्द बढ़ गई / यानी आल्मूनियम, स्टेनलेस स्टील, टीन / और ख़ाली जंग लगी लचीली शक्लें / सहसा शहर से निकलीं और गाँव पर छा गईं।

कोयला बीनने वाले काले काले बच्चे, / गोबर की डलिया लिये चरागाहों में / हर गाय भैंस की ताज़ा बीट बटोरने वाली / छोटी-छोटी लड़कियाँ, / फले आम के पेड़ों पर अकस्मात ढेला मार कर / भागनेवाले छोकरे—/ चीथड़े की तरह सड़कों पर लावारिस फिके हुए घिनौने घूर के लत्ते से / छोटे-छोटे अविकसित कालिदास, सूरदास, अफ़लातून अरस्तू / उस ज़िद्दी चुड़ैल औरत को अपनी मटमैली आँखों से घूरने लगे। मेम साहब की उभरी छातियों के बीच पड़ी काली रुद्राक्ष की माला देख / वह मन ही मन खुश होने लगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और तभी उन्होंने देखा / एक दैत्याकार पंजा उन बच्चों को टोकरी में भर कर / पास बहते समुद्र में फेंकने लगा / समुद्र कोई जरूरी नहीं बम्बई कलकत्ता मद्रास तक सीमित हो / हर शहर जंगल काटकर बनता है / नदियों का जल उतार कर बढ़ता है / समुद्र वह गाड़ी वालों का कटरा है / जहाँ सीपियों, घोंघों और सेवारों की तरह / उबकईयों के बीच आदमी रहते हैं / लेकिन जिनकी ज़िन्दगियाँ दरियाई घोड़े-सी होती हैं / और सूखी हुई नीरस चमड़ी, कछुये की पीठ-सी कड़ी / मितली पैदा करनेवाली होती है / और केवल सूखे सरोवरों को पैदा करती है / जाने क्या बात है / यह ज़िद्दी औरत जब कभी भी कहीं जाती है / एक दुर्घटना की तरह उतरती है / और फ़ातहे की नमाज़ की तरह / सारे शहर को मनहूस कर जाती है।

आज वह फिर आई है / रोजे के दिन ही रमज़ान मियाँ की बकरियाँ क़त्ल कर दी गई हैं / अभी-अभी शहर के आशिक़ मिज़ाजों का एक जुलूस निकला है / हर आशिक़ एक सफ़ेद प्लेट में अपना दिल, जिगर, गुर्दा, दिमाग़ लिये / सीना-बूबी करता निकल गया है / आम रास्तों पर / अजायब घर से नहीं – ज़िन्दा, भुखमरी में मरे इन्सानों के ठाठरों के / फाटक बना दिये गये हैं / बन्दनवार, तोरन पताकों से सजी सड़कों पर पानी नहीं / गोलियों, संगीनों और लाठियों से ताजा लहू छिड़कवा दिया गया है / दो चार हरी दूबें जो तारकोल की सड़कों का सीना तोड़कर / अपनी वर्जस्ता उग आनेवाली आदत से मजबूर हरियाली लिये उग आई हैं / उनको तराश कर उनकी जड़ें खोदी गई हैं, / और तेज़ाब न मिलने पर / हैज़ा अस्पताल से ताजे हैज़ा के कीटाणुओं को लाकर डाल दिया गया है / हदें बाँध दी गई हैं / और सारे शहर को एक कटघरे की शक्ल में बदल दिया गया है।

सारी मनहूस बिल्लियों को स्वागत के लिये / ट्रकों में भर कर बुला लिया गया है / उसमें वे बिल्ले भी हैं / जो खुद ही अपने दाँतों से अपनी औलाद काट डालते हैं / और हमेशा अपने जिस्म के रोयें दुम्बे भेड़ों की तरह फुलाकर / आस-पास के सन्नाटे पर गुर्राते हैं / अभी-अभी पशु विभाग द्वारा / तरह-तरह के विलायती नस्ल वाले / एलसेशियन और हाउण्ड्स इन सड़कों पर छोड़ दिये गये हैं / चौरस्तों, गलियों, मोड़ों और चौराहों पर उन्हें सफ़ेद पोश बनाकर खड़ाकर दिया गया है।

जगह-जगह पर गिलहरीनुमा औरतों को झाड़-पोंछकर सजा दिया गया है / साफ़-सुथरे लिबासों में अजीब किलहटियों की तरह लगनेवाली / "रायल ब्लड" वाली अनगिनत जिस्मों पर सुरखाब के पर लगा दिये गये हैं / हर जगह हम एक धोखे से दूसरे धोखे तक ज़िन्दा रह सकें / इसके लिये इश्तहारों का अम्बार लग गया है।
वह ज़िद्दी औरत जो अभी-अभी हेलीकोप्टर से / घुरहू के खपड़ैल पर उतरी है /

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ घण्टों में इस कटघरेनुमा शहर की सड़कों से गुज़रेंगी / हर फाटक चरमरा कर झुकेगा / हर जिस्म लड़खड़ाकर बिकेगा ।

पूरे शहर के जिस्म में / अपंग कोढ़ियों के जैसे ठूँठ नुमा हाथ-पैर उगने शुरू होंगे / फिर उन ठूँठ हाथों में टेढ़े-मेढ़े घिनौने पंजे / फिर उनमें नितान्त उबकाई पैदा करने-वाले नाखून / और उन नाखूनों से स्वयं अपने ही जिस्म को फाड़ता / नोचता पूरा शहर लहू लहान····

क्योंकि — / वह ज़िद्दी औरत जो। अभी-अभी / घुरहू के खपड़ैल को चुर्मुरा करते हुए उतरी है / उसे शहर का यही रूप पसन्द है ।

इसी माहौल में, हज से लौटी हुई सफेद बिल्ली की तरह / जब वह अपनी कंजी आँखें लिये निकलती है / तो शहर के सारे चूहे उसे अभिनन्दन करते हैं / अपनी-अपनी दुमें उठाकर वह एक साथ / अभिवादन करते हैं / और अपने रोयें फाड़कर पिस्सुओं की ऐसी फ़सल उगा देते हैं / जो पूरे शहर में महामारी फैला देती हैं ।

अभी-अभी पूरा शहर एक मैईयत-सा / बुल-डोज़र पर लाद दिया गया है / क्योंकि उस ज़िद्दी औरत को वही शहर पसन्द आता है / जिसकी जड़ें मिट्टी में न हों / और जो देखने-सुनने में भी अपनी ज़िन्दगी न जी सके / यानी आज / कफ़न में लिपटे इस मैईयत-नुमा शहर पर / कुछ ऐसी रूहें मण्डराने वाली हैं / कि जो दिन-दहाड़े / घरों से दूध पीते बच्चे चुरा ले जायेंगी / यानी उस ज़िद्दी औरत की ख़ातिर / ऐसे पतियों को दोज़ख़ बख्शी जायगी / जिन्होंने शहवत में हम दोनों के अलावा / किसी तीसरे का नाम लिया होगा ।

कल ही सारी रात अन्धेरे में / अनगिनत काले घोड़ों पर सवार / काले नकाबों से लैस अजनबी सवारों के चेहरे / शहर की नंगी सड़कों को घायल करते भाग-दौड़ में व्यस्त थे / ताज़िये की भाँति रंगीन शहर की उदासी और गहरी हो गई थी / हमें लगता था / हमारी पक्की इमारतों से सुलगते हुये धुयें / बाहर नहीं निकल पायेंगे / घुटन में डूबी हमारी आत्मायें / दफ़न होकर हमारे सात-पुश्तों की आत्माओं के साथ सो जायेंगी / क्योंकि यह ज़िद्दी औरत / उस कहानी की पहली खल नायिका है / जो घुरहू से लेकर घनश्याम दास तक / केवल ज़हर ही ज़हर फैलाती है / सच मानों इनमें से कोई भी ज़हर मुहरा नहीं हो पायेगा / क्योंकि सभी अपना-अपना प्रेत अपने कन्धों पर लादे घूम रहे हैं / और कहानी का सिलसिला गुल बकावली से लेकर / मोलें मुनरू तक अभी अधूरी है / और वह पेड़ जिस पर बार-बार हमारे कन्धों का का वैताल जाकर लटक जाता है / वही पेड़ है जिसके फल को विषैला बताया गया था / लेकिन फिर भी उस ज़िद्दी औरत ने हमें खाने पर मजबूर किया था ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिलसिला एक सिलसिला होता है / आदम से हव्वा और आदमी से औरत तक / उसका सिलसिला वैसा ही होता है / कभी वह अलिफ लैला के किस्सों या सिन्दबाद के कन्धों पर उगता है / और खत्म होता है उस वीराने रेगिस्तान में जहां एक भी आदमी नहीं होता / केवल आदमी और आदमीयत की एक हल्की सी याद होती है / आदम की कहानी जिस जिद्दी औरत से शुरू हुई थी / घुरहू और घनश्याम दास की कहानी उसी जिद्दी औरत की दास्तान से बंधी है / देश का देश आज एक रेगिस्तान की ओर बढ़ता जा रहा है / नदियों में पानी सिमिटता जा रहा है / पहाड़ों पर औषधियां समाप्त होती जा रही हैं / जमीन के नीचे पानी के सोते सूखते जा रहे हैं / आदमी की ऊँचाइयां घटती जा रही हैं / और अभी तक जो जानवरपन की बूं उसके जिस्म से आती थी वह भी खत्म होती जा रही है / कहते हैं उस जिद्दी औरत को या तो देवता पसन्द है या शैतान / या तो अमृत पसन्द है या विष / वह पानी से नफरत करती है / मिट्टी उसकी चाह में नहीं आती / उसके चम्पई रंग के जिल्द पर या तो खून की मालिश होती है / या फिर ताजा कस्तूरी की / और अपनी सलतनत में वह बार-बार एक ही कोशिश में तल्लीन है / और वह यह कि आदमी में बचा खुचा जानवरपन न रह जाय / सब सपाट चेहरेवाले काठ के जैसे लोग हों / जगन्नाथ की मूर्तियां, ढूंढ़ हाथों को फैलाये उनके सामने खड़ी रहे / कहीं से कोई भी जानवरपन उनको छू न जाय ।

आदमी की आदमीयत भी एक अछूते सपाटपन में बदल जाय ।

आज बरसों से इस शहर में काला सूरज ही उगता आ रहा है / बरसों से एक मटियाली रोशनी में यह पूरा शहर डूबा रहा है / बीज खेतों में नहीं नालियों में उगने लगे हैं / शहर का एक-एक लैम्प पोस्ट खामोश सलीब सा आदमी की तलाश में है / और पूरा शहर जिसमें आदमी ही आदमी बसते हैं / उस एक करिश्मा वाली जिद्दी औरत की खातिर सपाट चेहरेवाले होते जा रहे हैं / सारी जिन्दगी एक भुन्नाये हुए सांड की सींगों पर टंगी तन्नाई हुई / इस शहर में धूप की तलाश में दौड़ रही है / जाने कब वह उन सींगों से जमीन पर गिरकर खून से लतफत हो मर जाय / जाने कब एक बन्द ताबीज के भीतर कैद मंत्र सी यह जिन्दगियां अकुला जांय / जाने कब अंगारोंवाला फिर सूरज पृथ्वी फाड़कर उग आये / जाने कब रोशनी एक नदी बनकर बह जाय / जाने कब शहर की काली बिल्लियां जो अंधेरे में काले तेन्दुये सी लगती हैं सो जाँय / जाने कब एक घटना दुर्घटना में बदल जाय / और हमें अपनी परछाइयों के सहारे चलना पड़ जाय / अन्धेरे के सैलाब में जिनका मिलना मुश्किल होता है / और उजाले के दामन में वह स्याह से स्याहतर हो जाती है / ऐसी दशा में वह सफेद नागिन सी जिद्दी औरत शहजादे की लाश पर गुल बकावली चढ़ाने के लिए / लाश को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही हाँक कर परियों के देश में ले जाना चाहती है / जहाँ हर फूल एक तावूत और हर तावूत एक सिलसिला दर सिलसिला / मौत के भूखे और जिन्दगी के प्यासे होते हैं।

वह जिद्दी औरत आज खुश है / क्योंकि सपनों का शहजादा मर चुका है / और गुल बकावली की नसल अब इस देश में नहीं उगती / और परियों के देश से कोई फरिश्ता परियों के सामने ही / फूल को सांप बनाकर चला गया है / और तब से उस जिद्दी औरत की हविस और तेज हो गई है / क्योंकि वह जानती है कि सांप-सांप ही है उन्हें फूलों में नहीं बदला जा सकता / और आदमी-आदमी ही है उसे हर कीमत पर हांका जा सकता है।

कंचन मृग अब इस देश में काव्य में भी वर्जित है / लेकिन फिर भी सैकड़ों राम हैं जो हर बकरी को कंचन मृग मानकर / उस जिद्दी औरत के लिये मृगछाला लाने के लिये प्रस्तुत हैं / शहर के सारे तस्कर व्यापारी जो अभी तक भड़भुंज का काम कर रहे थे / धनुष बाण लेकर बकरी की तलाश में निकल पड़े हैं / और सब के सब खरगोश के कान उखाड़ कर ले आये हैं / उनका ख्याल है जिद्दी औरत को मृगछाला की पहचान नहीं है / खरगोश की जगह यदि किसी और जानवर की छाल हो तब भी / उसे खुश किया जा सकता है लेकिन वह भी खूब जानती है। और जान बूझकर खरगोश के कान से ही संतुष्ट है / क्योंकि उसकी निजी दिलचस्पी खाल में नहीं है / उस धोखे में है जो सरासर सफेद को स्याह और स्याह को सफेद कर सके / हर बेह- याई को साजिश और हर साजिश को एक धोखे तक पनपा सके।

जंगली सुअरों की तरह हमारे देश में एक जमात है / जिसके पास बिदक के बदले नाक के ऊपर एक विषैलासींग उगा रहता है / और जो पहचान, सुराग और दिमाग की जगह पर / केवल अन्देशों की आहट पर चलता, फिरता देखता, सूंघता, जानता पहचानता है / कल वह एक पहाड़ खोदने में लगा था क्योंकि उसे एक चुहिया की गंध मिल गई थी / आज वही समुद्र में सतुआ सान रहा है क्योंकि उसे विश्वास है / वह समुद्र में सोखता डालकर उसके अतल से सारी मणियाँ निकाल लेगा / कल से वही जमात फिर हमारे शहर में मण्डरा रही है / और शहर के दर ओ दीवार पर यह लिखा दिया गया है / कि अगर एक भी आदमी होश ओ हवास में चलता फिरता नजर आयेगा / या कि खुद अपने से उठता बैठता दिखाई देगा तो उसे जिन्दा दफन कर दिया जायगा / और तब से पूरे शहर के लोग चलते नहीं घिसटते, घुटनों के बल रेंगते हैं / बोलते नहीं महज एक दूसरे के स्वर में स्वर मिलाकर रेंकते हैं / और हमारे इस शहर के बगल में बसा दूसरा शहर और उस दूसरे शहर के बगल में बसा तीसरा / और तीसरे के बगल में चौथा और चौथे के बगल में पाँचवाँ / यानी एक के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बगल में एक सरसों के दाने की तरह बसा पूरा देश / और लीक के बगल में लीक पर: लीक के ऊपर लीक के पास लीक के बगल में लीक / और इस तरह पूरे काल की कृत्तात्मक अवधि / रेंगते और रेंकते घिसट रही है / और वह जिद्दी औरत हाथ में फूलों की असंख्य मालायें लिये / एक पर एक बिखेर रही है / क्योंकि इस पंगु और गूंगे देश की वह मलिका मोअज्जमां है / यानी सब कुछ उसके हुस्न और इश्क का तरजुमा है / पूरा देश एक सपाट नर मुण्डों का मेला है / आप चाहें इस मेले को देश कहें या लोग / सारा सब कुछ आत्म-भोग नहीं उसका निजी उपभोग बनकर ही जिन्दा है / वह तो है आबे-हयात लेकिन सारा देश मुर्दा है ।

कांच की दीवार पर आरी की नुकीली किरकिरी आवाजें बढ़ रही हैं / रेत जैसे दाँतों तले किरकिरा रहती है / गांव के पहिये धुरों में उलझे स्वयं अपनी ही गोलियाँ चबा रहे हैं / जैसे फौलाद को पत्थर पर घसीट कर एक तेज करखती आवाज लकीर बनती जा रही है ।

यानी एक दाग बेल दूसरी दागबेल के पड़ोस में रगड़ पैदा कर रही है / और उससे अनवरत एक उबकाई पैदा करनेवाली आवाज निरंतर गूंज रही है / शहर से गांव तक की सभी पन चक्कियां बन्द हैं / और उनकी धुक धुक धुक धुक की आवाज की जगह / यह तेज तेजाबी नश्तर की लकीर की तरह खरोंच पैदा करनेवाली आवाज / निरन्तर तेजी के साथ बढ़ रही है / और अमर बेल की तरह पूरे गांव शहर कस्बों और देश की परिधि में छा रही है / जिस जिद्दी औरत को यह सारी मनहूस आवाजें पसन्द हैं / जो हमारे दिल ओ दिमाग पर नश्तर की तरह काम करता है / वही उसके मरियल संगीत का वह स्वर है जो उसे तर ओ ताजा रखता है ।

शायद ऐसी ही आवाज रही होगी जब / अपने कन्धों पर सलीब लिये एक लम्बा कारवाँ / पहाड़ों के ऊपर लड़खड़ाता हुआ चढ़ रहा होगा / या ऐसी ही आवाज रही होगी जब शाहे सुलेमान के जुलूस में / अनन्त मानव समूह रथ के आगे पीछे घिसट रहे होंगे / लेकिन आदमी की याददाश्त ही कमजोर है / इतिहास जब भी चुकता है, रुकता है, या झुकता है / तो यह बढ़ती हुई आवाज कहीं हम सब के भीतर एक गाले की सूत्र सी / पिरो उठती है और हम सब गुथम्म गुथ्थ होकर एक हुजूम बन जाते हैं / और निकालते हैं अपनी बिना नाखून वाली उँगलियों से इस तेजाबी आवाज की नकसीर / खुद अपने ही पंजे बघ नख से अपने को फाड़कर लहू लुहान होकर / अपना शृंगार करते हैं / लेकिन तब यह जिद्दी औरत हमेशा अपने सिर पर अपना आंचल रखकर / नितान्त निरीहता के साथ याद दिलाती है / उस रजिया की जिसके पास अन्त में याकूत के कफन की एक छीर ही शेष बची थी ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देश आज जहां बेचैन है / और जिस रंग औ रेशे में उफनता हुआ उसका अस्तित्व चुर रहा है/ वहाँ एक लावारिस लाश की सौगन्ध है / जो घुरहू से घनश्याम दास तक बराबर पहुँचती है / उस लावारिश लाश का न कोई मरियम है और न कोई जान / वह लाश हम सब के कन्धों पर लदी-लदी हमेशा चलती है / उसके हाथ हमारे टखनों से टकराते हैं / और जब कभी भी हम तेज चलनेवाले होते हैं / तो वह दुहरी होकर हमारे पैरों से भिड़ती है / और वह जिद्दी औरत जो अभी-अभी इस शहर में आई है / लगातार अनवरत उसी लावारिस लाश की तलाश में घूम रही है / इसलिए नहीं कि उसे हमारे दुखते कन्धों और कबन्ध आत्माओं से कोई मोह है / बल्कि इसलिये कि यदि वह एक ही लाश हम सब के कन्धों पर / अलग-अलग लटकी रहेगी तो और लाशों का हुजूम जिन्दा हो जायगा / और यदि लाशों का हुजूम जिन्दा होगा / तो पूरा देश एक बार उस जिद्दी औरत की खातिर जिन्दा लाश हो जायगा / रगड़ टकराहट आग की चिनगियाँ पैदा करेगी / और कहीं इस पूरे शहर और शहर से गाँव और गाँव से पूरा देश / आग सुलगाने में दक्ष हो जायगा / तो उस भयंकर ज्वाला में वह सोना भी निखर तपकर चमक उठेगा / जिसे वह मिट्टी समझकर केवल अपने आस-पास से दूर रखने में ही सेहत मानती है / हर अलाव फौलाद उगलेगा / और हर फौलाद आग में पिघल कर रोशनी का दरिया बन जायगा / और रोशनी फिर काले सूरज के साये में दबेगी नहीं / और सूरज रोशनी का धब्बा बनने के बजाय / एक ऐसा अजस्र स्रोत बन जायेगा / जिसमें पहाड़ों की सारी वनस्पतियाँ चमक उठेंगी / और वह लावारिस लाश जो हमारे कन्धों पर है / सूरज के सातवें घोड़े की चौथी टाँग में / गति भरता आगे-आगे चलता दिखेगा।

यानी ज्योति-वाही अग्नि पिण्ड सा / वह हमारी सारी कस्मों का भार वहन करेगा / सप्त-ऋषि केवल ध्रुव को ही नहीं / पूरे सौर मण्डल का परिक्रमा करता रहेगा।

कल सुबह-सुबह / एक हेलीकोप्टर से घुरहु के खपड़ैलवाले मकान पर / वह निहायत ही फाहिशाना अन्दाज में नहीं उतरेगी / उस जिद्दी औरत की जगह / वहाँ से निकलेगी जिद्दी आग की लपटें और जो सारे ठाठ छप्पर को बना देगी धधकती / तेजाबी आग वाली भट्ठी / पैदा करेगी कागजी पैरहन वाले इन्सान / और आग से जन्मने वाले फरिश्ते / और पानी की तलाश में बेचैन रहें/ कल सुबह सुबह / जब वह जिद्दी औरत / यहाँ वहाँ कहीं-नहीं आ जा सकेगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साक्षात्कार :

प्रख्यात समीक्षक और कथाकार डॉ० देवेश ठाकुर से सुनील कौशिश की लम्बी बेबाक बातचीत :

सुनील कौशिश : जब आपने लिखना आरम्भ किया तब कौन-सी जरूरत आपको लिखने के लिए सबसे अधिक आन्दोलित करती थी ?

देवेश ठाकुर : जब मैं ग्यारहवीं-बारहवीं में पढ़ता था, तब मैंने कुछ गद्य-काव्य लिखे थे। मेरा एक मित्र था—सुदेश, जिसे फिल्मों में जाकर 'प्ले बैक सिंगर, बनने का शौक था। वह गाता बहुत अच्छा था। उन दिनों हम लोग रोज नजीबाबाद से नगीना पढ़ने, रेलगाड़ी से, जाते थे। रास्ते में अपने भविष्य की सुन्दर-सुन्दर कल्पनाएँ करते। सुदेश कहता—"हम अपनी एक फिल्म कम्पनी शुरू करेंगे उसमें मैं म्युजिक डायरेक्टर बनूंगा और तू स्टोरी राइटर बनेगा।" एक और दोस्त था हमारा—लल्लू सिंह पाल। वह हीरो बनेगा। एक और बन्दा था—जगदीश लाल। वह कॉमेडियन बनेगा। (जगदीश लाल का कद बहुत छोटा था, इसीलिए) इस तरह सुदेश ने मुझसे पहली कहानी (लघु उपन्यास) लिखवायी—'चमकीले पत्थर'। (पता नहीं, वह पांडुलिपि कब नष्ट हो गयी)। बहरहाल, इस सब को लिखना आरम्भ करना नहीं कहा जा सकता।

लिखने की शुरुआत देहरादून में हुई। नगीना से इंटर पास करके मैं सन् ५१ में देहरादून चला आया, आगे की पढ़ाई करने। वहाँ मेरा सम्पर्क बड़े प्रतिभाशाली छात्रों से हुआ। ये सब साथी निम्न मध्यवर्ग के थे और अपनी पढ़ाई का खर्च खुद उठाते थे। दिनेश कुकरेती (जो अब एन० डी० ए० में प्रोफेसर हैं), सत्य प्रकाश शर्मा (जो यू० पी० में कहीं तहसीलदार है) आदि अनेक कवि-हृदय मेरे मित्र बने। वे शहर की छोटी-बड़ी साहित्यिक गोष्ठियों में कविता सुनाते। कवि होने के नाते वे विद्यार्थियों में खूब लोकप्रिय भी थे। मुझे इन्हीं लोगों ने प्रोत्साहन दिया और मैं भी तुकबन्दी करने लगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ समय के बाद मैं एक कोचिंग क्लास में पढ़ाने लगा। वहाँ एक लड़की से मेरा प्यार हो गया। वह तब दसवीं में पढ़ती थी। इस सम्बन्ध ने मेरी भावनाओं को और उत्तेजित किया और मेरी रचनाओं में थोड़ा प्रवाह आने लगा। उन दिनों बच्चन, नीरज, कुल्लड़ और हंसकुमार तिवारी की कविताओं की धूम मची हुई थी। मैंने भी इनकी रचनाएँ पढ़ी, इनको सुना—इससे भी लेखन में गति आई। लेकिन ये सब बातें मेरी कविता करने की मजबूरी या जरूरत नहीं बन पाईं।

कविता करने की जरूरत बनी मेरी तन्हाई। मेरा अकेलापन। देहरादून में, पहली बार मुझे अपने परिवार वालों से अलग रहना पड़ा। घर की बड़ी याद आती थी। अकेली घड़ियों में या तो मैं रोता था या कविता करता था। कविता पूरी करके बड़ी शान्ति मिलती थी। उसे अपने मित्रों को सुनाकर और भी सुख मिलता था। इस तरह, मैं समझता हूँ, मेरा अकेलापन ही, मेरे लिखने की शुरुआत का कारण बना।

कौशिश : कोई विचारधारा या सिद्धान्त आपके विचारों को बल देता है? और क्या आप लेखन में उसका उपयोग करते हैं?

देवेश : विचारधारा बनने और बनाने में बड़ा समय लगता है। उसके लिए गम्भीर अध्ययन और प्रत्यक्ष रूप से अनुभव ग्रहण करने की अनिवार्यता को झेलना पड़ता है। मैं कालेज के दिनों तक बहुत सामान्य विद्यार्थी था। परिवार निम्न मध्य-वर्गीय था। सारा समय ट्यूशन करने, अखबार बेचने, और इसी तरह के छोटे-मोटे कामों में निकल जाता था। अध्ययन करने का समय ही नहीं मिलता था। मेरा वास्तविक अध्ययन १९६१ में पी० एच० डी० करने के बाद शुरू हुआ। वैसे देहरादून में मैं एस० एफ० का सदस्य था। लेकिन नाममात्र का सदस्य। उसमें किसी तरह की कोई गम्भीरता नहीं थी। बस अन्याय और शोषण को मैं महसूस अवश्य करता था—लेकिन उसके कारण मेरे सम्मुख, तब बहुत स्पष्ट नहीं थे। लेकिन १९६१ के बाद मैंने ठीक से अध्ययन करना आरम्भ किया। तब तक मुझे नौकरी में आए भी ५–६ साल हो चुके थे। सुविधाएँ भी जुड़ने लगी थीं। तभी मैंने मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद–व्यक्तिवाद का अध्ययन किया और मैंने पाया कि मार्क्सवाद मेरी मानसिकता, मेरे परिवेश और मेरे संस्कारों के अनुकूल है। मैंने उन्हीं दिनों मार्क्स, लेनिन की सैद्धान्तिक कृतियों के साथ-साथ पहली बार भारतेन्दु और प्रेमचन्द को विस्तार से पढ़ा। गोर्की की 'माँ' भी तभी पढ़ी। इन महान् साहित्यकारों की विचारधारा और आदर्श ही मेरे आगे के लेखन के पथ-प्रदर्शक बने। आज मैं सिर्फ मार्क्सवाद को मानव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाति के त्राण का एकमात्र वैज्ञानिक सिद्धान्त मानता हूँ। मानता ही नहीं, उसे अपने सामर्थ्य के अनुसार व्यवहार में भी लाने कोशिश करता हूँ। मेरे लेखक में भी, आपने देखा होगा, चाहे वह समीक्षात्मक हो या रचनात्मक—इसी सिद्धान्त का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। लेकिन, इतने पर भी मैं अपने को वादात्मक भूमिका पर प्रतिबद्ध लेखक नहीं मानता। मेरी प्रतिबद्धता सहज और मानवीय अधिक है।

कोशिश : अपने लेखन में आपको लगता है कि कहीं अन्तर्विरोध है ?

देवेश : रचनात्मक लेखक में तो अन्तर्विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ, समीक्षाओं में कभी-कभी दोस्ती निभानी पड़ जाती है। लेकिन व्यक्तिवादी, कुण्ठाग्रस्त रचनाओं को, चाहे वे किसी की भी क्यों न हो, मैंने कभी अधिमान नहीं दिया।

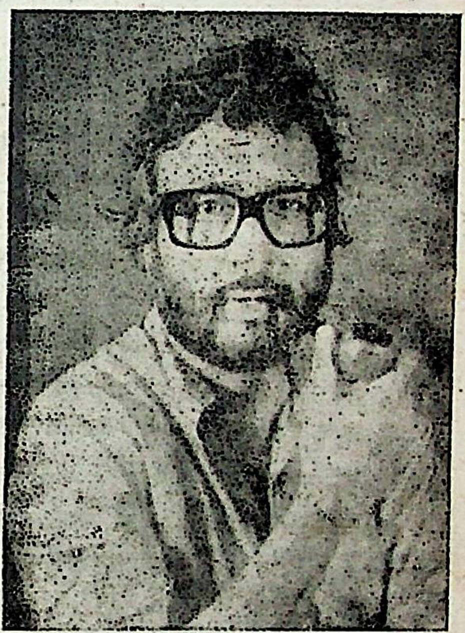

देवेश ठाकुर

कोशिश : हिन्दी कहानी के वर्तमान स्वरूप और चरित्र से आप कहाँ तक सन्तुष्ट हैं ?

देवेश : पिछले ८–१० साल से मैं कथा-साहित्य पर ही अधिक काम करता हूँ। मुझे यह लगता है कि हिन्दी कहानी की व्यक्तिवादी, कुण्ठाग्रस्त और वायवी प्रवृत्ति अब काफी शिथिल हो गयी है। इसको मैंने स्वयं भी अनुभव किया है और 'कथा-यात्रा' (सम्पादक : कमलेश्वर) से जुड़े रहने के दौरान इसके प्रभाव भी मुझे मिले हैं। जब कमलेश्वर ने 'सारिका' छोड़ी तो वे 'सारिका' में प्रकाशित होने के लिए आयी हुई सारी कहानियों को अपने साथ उठा लाए। कम से कम ८००–१००० कहानियाँ तो होंगी ही। उन्हीं कहानियों में से 'कथा-यात्रा' के प्रारम्भिक अंकों के लिए कहानियाँ चुनी जाती थीं। अब क्योंकि 'कथा-यात्रा' को व्यावसायिक स्तर पर चलाना था, इसलिए विविध-रंगी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहानियों की आवश्यकता पड़ी। लेकिन हमारे पास जितनी भी कहानियाँ थीं—वे सब की सब जन-जीवन की विसंगतियों, अभावों, शोषण और चारित्रिक अन्तर्विरोध को ही चित्रित और रेखांकित करती थीं। प्रेम, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की रूमानी कहानियाँ, उस जंगल में, एक भी नहीं मिल पाईं। इससे यह धारणा पुष्ट हो जाती है कि आज हिन्दी कहानी प्रेमचन्द की धारा को ही अधिक यथार्थवादी भूमिका पर आगे बढ़ा रही है। आज की कहानी ने कृत्रिम आदर्शवाद का पल्ला भी छोड़ दिया और वह जन असन्तोष और आक्रोश को भी सशक्त अभिव्यक्ति दे रही है। भले ही इस असन्तोष और आक्रोश को कुछ कहानीकार मात्र-भंगिमा के रूप में अपनाए हुए हैं। महत्वाकांक्षी मध्यवर्गीय मानसिकता के तहत बनी हुई इस तरह की कृत्रिम भंगिमा को अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता था।

लेकिन—और यह 'लेकिन' बहुत महत्वपूर्ण है—मैं इस सब से सन्तुष्ट ही हूँ, यह कहना भी गलत होगा। हमारे नए कहानीकारों में साधना की कमी स्पष्ट परिलक्षित होती है। पहले तो वे बड़े जोश-खरोश के साथ शुरू होते हैं। लेकिन जल्दी ही उनका यह उत्साह या तो अवसरवादिता में बदल जाता है या वे चुक जाते हैं। यह स्थिति चिन्ताजनक है। वैसे कहानी लेखन की आज की दिशा से—विशेषकर जो छोटी स्तरीय पत्रिकाओं में स्पष्ट हो रही है—मैं मोटे तौर पर असन्तुष्ट नहीं हूँ।

कौशिश : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी ने अपनी पूर्व परम्परा से स्वयं को सर्वथा अलग घोषित किया है। कोई भी धारा अपनी पूर्व परम्परा से क्या पूर्णतः अलग हो सकती है ? इस प्रकार के दावे कहाँ तक तर्कसंगत हैं ?

देवेश : जैसा कि मैंने अभी कहा है कि—नव्यतम कहानी में प्रेमचन्द की दृष्टि का ही विकास अधिक हो रहा है। हाँ, सन् ६० के आसपास तक या यों कहें कि सातवें दशक के मध्य तक कहानी अवश्य भटक गयी थी। लेकिन आज जो सार्थक कहानियाँ लिखी जा रही हैं, उनमें अपनी पूर्व की रचनात्मक दृष्टि निश्चित रूप से सुरक्षित है। जो थोड़ा-सा बदलाव या तेज-तर्रार भंगिमा इनमें दिखलाई पड़ती है वह युग, परिवेश और मानसिकता में परिवर्तन के कारण है। इतिहास और परम्परा से विच्छिन्न आगे की कोई चीज नहीं होती—नहीं हो सकती, मैं यह मानता हूँ। मैं समझता हूँ कि आज की कहानी अपनी परम्परा से सर्वथा अलग नहीं, बल्कि उसकी अगली कड़ी के रूप में व्यक्त हो रही है और जो इसमें सर्वथा भिन्नता देखता है या भिन्न होने की बात कहता है—वह अपने को और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने समय के लेखन को अधिक महत्वपूर्ण जतलाने की भ्रामक मानसिकता का शिकार है।

कौशिश : स्वतन्त्रता के बाद के तमाम हिन्दी आन्दोलनों को आप किस रूप में लेते हैं ? हिन्दी कहानी के स्वस्थ विकास में इन आन्दोलनों की भूमिका सकारात्मक रही है या नकारात्मक ?

देवेश : कहानी-विधा पर लिखी गयी अपनी पुस्तक 'हिन्दी कहानी का विकास' पर मैंने इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया है। मेरा मानना यह है कि कहानी-विधा के सारे आन्दोलन व्यक्ति विशेष की 'इमेज' बनाने के लिए चलाए गए—और इनसे सम्बद्ध व्यक्तियों को लाभ भी हुआ। भले ही यह लाभ स्थायी नहीं रहा। 'नयी कहानी' और 'समानान्तर कहानी' के नायक कमलेश्वर की स्थिति आज हमारे सामने स्पष्ट है। महीप सिंह का 'सचेतन कहानी' आन्दोलन उन्हें एक विज्ञापन बटोरू पत्रिका तो दे गया लेकिन कहानीकार के रूप में उनका क्या योग बन सका है, यह किसी से छिपा नहीं है। उनकी विशिष्ट '५१ कहानियों' का जो संकलन १–२ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ, उनमें से १–२ कहानियाँ ही थोड़ा सा ध्यान आकर्षित कर पाती हैं। "समकालीन कहानी आन्दोलन" और "अ–कहानी आन्दोलन" का आज कोई नाम लेवा भी नहीं है। "सक्रिय कहानी आन्दोलन" न राकेश वत्स को ही कहानीकार बना सका और न कहानी में सक्रियता ही ला सका। इन आन्दोलनों से थोड़े समय के लिए वैसी ही सुगबुगाहट अवश्य हुई जैसी मोहल्ले की औरतों में नल पर पानी भरते समय 'तू-तू-', 'मैं मैं' हो जाने की स्थिति में हो जाती है और बस—थोड़े समय के बाद सब शान्त हो जाता है। यह शान्ति और सन्नाटा आप इन दिनों महसूस कर ही रहे होंगे। आजकल कुछ बिल्कुल नए कहानीकार भी अपने अग्रजों की इसी राह पर चल रहे हैं। लेकिन वे आन्दोलन नहीं कर रहे, दशकों की कहानियाँ सम्पादित कर रहे हैं और कहानी के क्षेत्र में मित्र-भाव और शत्रु-भाव को जन्मा रहे हैं। जाहिर है, इनका भी वही हश्र होगा जो आन्दोलनवादी कहानीकारों का हुआ।

कौशिश : अपने लम्बे लेखनकाल के अनुभव के आधार पर ही हिन्दी आलोचना के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है ? उसके वर्तमान स्वरूप से आप कहाँ तक सन्तुष्ट हैं ?

देवेश : आलोचना और रचनात्मक लेखन के सन्दर्भ में भी वस्तुपरकता को मैं सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ। वस्तुपरकता के अभाव में कोई ईमानदार चीज नहीं

फा०—३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2.

लिखी जा सकती। मैंने गम्भीर लेखन आलोचक के रूप में ही आरम्भ किया। आलोचना में मैं कृतिकार के व्यक्तित्व, उसके परिवेश-संस्कार तथा उसकी रचनार्धमिता को मिलाकर उसका आकलन करने के पक्ष में हूँ ! इससे रचना का सही स्वरूप और आशय पाठकों के सम्मुख स्पष्ट होता है। लेकिन बहुत बिरले समीक्षक ही ऐसा करने का जोखिम लेते हैं। मैंने अपने सामर्थ्य भर यह किया है।

जहाँ तक आलोचना के वर्तमान स्वरूप का सम्बन्ध है—उससे मैं क्षुब्ध हूँ। आज रचनाकार, रचनाकार बनने से पहले आलोचक तय कर लेता है। और आलोचक अपने प्रिय (इस 'प्रियता' का कारण चाहे जो भी हो) रचनाकारों का समीक्षक नहीं, वरन् प्रवक्ता बन कर प्रस्तुत होता है। नामवर–निर्मल वर्मा, अज्ञेय-चन्द्रकांतबांदिवडेकर, चन्द्रभूषण तिवारी-इसराइल के रिश्ते इस संदर्भ में देखे जा सकते हैं। कहीं-कहीं यह 'आलोचना' जातीयता के आधार पर भी होती है। जिंदगीनामा—१' की प्रशंसाएँ इसका प्रमाण है। 'जिंदगीनामा—१' न इतिहास है, न उपन्यास। लेकिन 'प्राजी' किस्म के लोगों ने इसकी प्रशस्ति में जमीन–आसमान एक कर दिया। और 'महाभोज' जैसे सशक्त उपन्यास की तुलना में 'भैन जी' को अकादमी पुरस्कार भी दिला दिया। वैसे, अपनी पूछ-ताछ के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि पूरे देश में १०० लोगों ने भी ईमानदारी के साथ इस 'अकादमी पुरस्कार प्राप्त कृति' को पूरा पढ़ सकने की 'जिल्लत' नहीं उठाई होगी। उपन्यास के नाम पर तो इसे पढ़ना अपनी–'सहनशक्ति' की परीक्षा लेना है।

लेकिन इन विसंगतियों के बीच मजे की बात तो यह है कि हिन्दी आलोचना, भारत की तमाम भाषाओं के आलोचना-साहित्य से (गुण और परिमाण दोनों में) अधिक समृद्ध समझी जाती है।

कोशिश : समीक्षा से असंतुष्ट होने पर क्या सृजनात्मक लेखकों को समीक्षा कार्य में दखल देना चाहिए ?

देवेश : मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझता। अगर रचना उत्कृष्ट होगी तो उसका उत्कृष्ट मूल्यांकन होगा ही। चाहे समीक्षक उसे कितना ही उपेक्षित करे या वह कहीं से भी प्रकाशित हो। 'जूही की कली' की पहले कितनी आलोचना की गयी लेकिन आज वह छायावादी काव्य की 'आदि–कविता' के रूप में प्रतिष्ठित है। 'मैला आँचल' का प्रथम संस्करण किसी अनामी प्रकाशक के द्वारा, बिहार में न्यूज प्रिंट पर छापा गया था। आज वह प्रथम आंचलिक उपन्यास और आज तक के आंचलिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। मैं कहना चाहता हूँ कि रचनाकार को अपनी उपेक्षा और पीड़ा को सहलाने के लिए समीक्षक के रूप में अपना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवक्ता बनने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। उसे यह मान कर चलना चाहिए कि समीक्षक से कहीं अधिक महत्वपूर्ण पाठक और समय है। समय और पाठक ही उसकी रचना का सही मूल्यांकन करेंगे।

कौशिश : उपन्यासकार को उपन्यास के सृजन में उसका कहानीकार कहाँ तक किस रूप में सहायक हो सकता है और किस रूप में बाधक ?

देवेश : इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर वही दे सकते हैं जिनकी उपन्यास और कहानी लेखन में समान गति है। मेरी स्थिति अलग है। मेरा पहला उपन्यास (भ्रम भंग) सायास लिखा गया उपन्यास नहीं था। वह तो मेरे हृदय से उसी तरह फूटा था जैसे बिल्कुल परवशता की स्थिति में कविता फूटती है। और संयोग से वह अच्छे प्रकाशक (ज्ञानपीठ) से प्रकाशित हुआ और उसे पाठकों-समीक्षकों ने एक स्वर से सराहा भी तो मुझे प्रोत्साहन मिला और मैं उपन्यास लिखने लगा। लेकिन कहानियाँ मैंने बहुत कम लिखी हैं—यों कहूँ कि कहानी लिखने में मुझे 'कंटाला' आता है। मेरा पहला कहानी संग्रह, अब पाँच उपन्यासों के छपने के बाद प्रेस में जा रहा है। सो, उपन्यास लेखन में कहानीकार के सहायक और बाधक होने की बात को, मैं सोचता हूँ, मैं ठीक से विश्लेषित करने की स्थिति में नहीं हूँ।

कौशिश : कहानी विधा पर आपने काफी काम किया है। 'कथा-क्रम' और 'कथा-वर्ष' की अनेक पुस्तकों के सम्पादन कार्य के पश्चात् आपकी नयी योजनाएँ क्या हैं ?

देवेश : फिलहाल मुझे अपने आगे के तीन उपन्यास पूरे करने हैं। एक-दो साल से मैंने उपन्यासों पर भी 'कथा-क्रम' जैसा काम शुरू कर रखा है। मैं समझता हूँ कि 'कथा-क्रम' की भाँति उपन्यासों पर किया गया यह कार्य भी महत्वपूर्ण और उपयोगी होगा।

कौशिश : हिन्दी में इस समय अनेक लघु-पत्रिकाएँ निकल रही हैं। आज के सन्दर्भ में इनकी क्या सार्थक भूमिका है और वे उसे निभाने में कहाँ तक सफल हैं ?

देवेश : छठे दशक के बाद में हिन्दी में हमेशा ही लघु-पत्रिकाएँ निकलती रही हैं और बन्द होती रही हैं। सच्चाई तो यह है कि इतने बड़े देश में लघु-पत्रिकाएँ ही रचनात्मक अपेक्षाओं को पूरा कर सकती हैं। इनके माध्यम से क्षेत्रीय रचनाकारों को अपनी रचनाधर्मिता को प्रस्तुत करने का अवसर भी मिल सकता है और पारिवेशिक जीवन को वस्तुपरक और प्रामाणिक रूप से उकेरने में भी ये पत्रिकाएँ सहायक हो सकती हैं। जनमत बनाने में ये पत्रिकाएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण योग दे सकती हैं।

लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा हो नहीं रहा है। हमारे यहाँ लघु-पत्रिकाओं की अनेक श्रेणियाँ हैं। कुछ पत्रिकाएँ साहित्य और वैचारिकता को ईमानदारी से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समर्पित हैं। (इस सन्दर्भ में नामोल्लेख सिर्फ इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि हर छोटी पत्रिका और हर नये लेखक के प्रति मेरे मन में सम्मान है—और नामोल्लेख करके उनके बीच में अपने प्रति कोई दुर्भाव पैदा नहीं करना चाहता। लेकिन नामोल्लेख न करके मेरी बात अस्पष्ट रह जायेगी, ऐसा नहीं है)। कुछ पत्रिकाएँ केवल आक्रोश की मुद्रा अपनाये, अवसरवादी 'पत्रिकाएँ हैं। पिछले तीन दशकों में अनेक प्रगतिशील प्रतिबद्ध और वामपंथी सोच की लघु-पत्रिकाओं और उनके नौजवान सम्पादकों का बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं के प्रतिक्रियावादी और साहित्य की राजनीति करने वाले सम्पादकों के व्यक्तित्व में विलय हो चुका है।

मैं सोचता हूँ कि इस समय लघु-पत्रिका के वास्तविक दायित्व को निभाने वाली-पत्रिकाएँ कम ही हैं। इस दिशा में सुस्पष्ट चिंतन वाले ईमानदार रचनाधर्मी जब तक आगे नहीं आएँगे तब तक लघु-पत्रिकाओं की सही उपयोगिता नहीं बन पा सकेगी।

कौशिश : अपने-रचना प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुछ बतलाइए ?

देवेश : मैं यहाँ अपने सृजनात्मक लेखन की रचना-प्रक्रिया के बारे में ही कहना चाहूँगा। शायद आपके इस प्रश्न में भी यही भाव निहित है। जब कोई विशेष घटना मेरे दिमाग में काफी समय तक बनी रहती है और काफी समय बीत जाने के बाद भी वह मुझे महत्वपूर्ण लगती है तो उसे मैं अपने कथानक के रूप में चुन लेता हूँ। फिर उसके बाद मैं उसके माध्यम से प्रस्तुत किये जाने वाले कथ्य पर विचार करता रहता हूँ। इसी बीच प्रासंगिक सूत्र भी बनते जाते हैं। कथ्य निश्चित हो जाने के बाद मोटी-मोटी रूप रेखा तैयार कर ली जाती है। प्रमुख पात्रों, घटनाओं, प्रसंगों, विचारों आदि को अलग से लिख लेता हूँ। इसी प्रकार बीच-बीच में सुन्दर शब्दों, प्रभावशाली वाक्यों, वाक्यांशों की भी एक लम्बी सूची बना लेता हूँ। इस सूची को तैयार करने में मेरी डायरी तथा उस दौरान पढ़ी हुई पत्रिकाएँ, पुस्तकें काफी उपयोगी सिद्ध होती हैं। उसके बाद मैं कथानक की प्रस्तुति के लिए शिल्प की खोज करता हूँ। आपको जानकर खुशी होगी कि मेरे पाँचों उपन्यासों में शिल्प में भिन्नता है और छठे उपन्यास में, जो मैं इन दिनों लिख रहा हूँ, मैं शिल्प का नितान्त नवीन प्रयोग कर रहा हूँ। लेकिन इसके बाद भी मैं यह ध्यान अवश्य रखता हूँ कि कथा का शिल्प, कथानक पर हावी न होने पाये। एक बार यह सब हो जाने के बाद ही मैं लिखना शुरू करता हूँ। लिखने के बीच मुझे कोई मुश्किल नहीं पड़ती। मैंने हमेशा अपना पहला ड्राफ्ट ही टायपिंग को दिया है!

कौशिश आपकी अपनी दृष्टि में आपके श्रेष्ठ उपन्यास कौन से हैं ? मेरा तात्पर्य अब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक प्रकाशित उपन्यास 'भ्रम भंग', 'प्रिय शबनम !' और 'कांचघर' में से आप किसे श्रेष्ठ मानते हैं ?

देवेश : यों तो मेरे दो और उपन्यास 'इसीलिए' और 'अपना-अपना आकाश' इस महीने के अंत तक प्रकाशित हो रहे हैं। लेकिन अभी मैंने इतना लिखा ही नहीं है कि 'श्रेष्ठता' जैसे बड़े शब्दों को अपने कृतित्व के साथ जोड़ने का साहस कर सकूं। वैसे 'भ्रम भंग' और 'कांचघर' को पाठकों की अधिक स्वीकृति मिली है। लेकिन जहाँ तक मैं सोचता हूँ, मैं उपन्यासकार के रूप में निरन्तर आगे ही बढ़ा हूँ। 'प्रिय शबनम ! ' को अपनी उपन्यास-यात्रा की मैं एक महत्वपूर्ण कड़ी मानता हूँ। लेकिन श्रेष्ठता का दावा किसी कृति के बारे में नहीं करना चाहता। यह काम समीक्षकों और उससे ज्यादा पाठकों का है।

कौशिश : 'विचार' पत्रिका के सम्पादक की हैसियत से बतलाने लायक कोई अनुभव ?

देवेश : 'विचार' को मेरी मित्र मंडली ने 'लांड्री' और 'धोबीघाट' का नाम दे रखा था। क्योंकि उसमें हमने पदासीन प्रतिक्रियावादी लेखकों की कृतियों का 'धुलाई-अभियान' चला रखा था—और वह भी बहुत गम्भीर, एकेडेमिक और प्रामाणिक तरीके से। तब एक-एक कृति पर लिखने के लिए एक-एक महीना लग जाता था। 'गुनाहों के देवता' और 'नदी के द्वीप' पर जो बड़ी समीक्षाएँ मैंने लिखीं, उनके लिए भारती और अज्ञेय का अधिकांश लेखन पढ़ना पड़ा। इसका प्रभाव भी पड़ा। यह प्रभाव मैंने तब अनुभव किया जब जैनेन्द्र जी ने (जो उन दिनों अपने इलाज के लिए मेरे एक डॉक्टर मित्र के पास अतिथि के रूप में ठहरे हुए थे) मुझे एक दिन बुला भेजा। (उनके मन में सम्भवतः भय समा गया था कि अब उनकी भी बारी आनेवाली है) सबसे अधिक चर्चा डॉ० पी० जयरामन के लेख 'डॉ० मलिक मोहम्मद की शोध-प्रक्रिया' की हुई। (डॉक्टर मोहम्मद उन दिनों दक्षिण के एक विश्वविद्यालय में हिन्दी के विभागाध्यक्ष थे)। डॉ० जयरामन ने उद्धरण देकर यह साबित किया था कि डॉ० मुहम्मद के शोध-प्रबन्ध में पूरे पैरे के पैरे डॉ० हरवंशलाल शर्मा और डॉक्टर सावित्री सिन्हा के शोध-प्रबन्धों में से, बिना उन्हें उद्धृत किये दिये हुए हैं। इस लेख से हिन्दी-शोध में चल रहे भ्रष्टाचार की कलई खुल गई। मुझे तब यहाँ के लोग बड़े भय और सम्मान की दृष्टि से देखने लगे थे क्योंकि इस व्यावसायिक नगर में हिन्दी शोध का एक अच्छा अंश व्यावसायिक स्तर पर लिखा जाता रहा है। भाई लोगों को डर लगता था—पता नहीं, अगले 'अंक' में क्या हो। लेकिन उनके सौभाग्य से और अपने दुर्भाग्य से हम 'विचार' के ६ अंक ही निकाल पाये। आर्थिक अभावों के कारण उसे बंद कर देना पड़ा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कौशिश : साहित्य में राजनीतिक घुसपैठ को आप किस रूप में लेते हैं ? रचना के लिए 'वाम' जब एक दर्शन है तो उसके अन्तर्गत परस्पर विरोधी शिविरों का क्या औचित्य है आपकी दृष्टि में ?

देवेश : साहित्य को मैं अभावग्रस्त, अन्याय-पीड़ित और शोषित जनता का प्रवक्ता और पक्षधर मानता हूँ। आज के माहौल में साहित्य की इस पक्षधरता के अतिरिक्त अन्य कोई अर्थवत्ता नहीं बनती। ऐसी पक्षधरता वामपंथी लेखकों में ही हो सकती है। जहाँ तक राजनैतिक घुसपैठ का सवाल है, अगर साहित्य में राजनीति का प्रवेश पक्षधरता के लिए होता है तो उसमें मैं कोई बुराई नहीं देखता। लेकिन अगर यह 'प्रवेश' प्रवेश न होकर 'घुसपैठ' है तो निश्चित ही बुरा और हानिप्रद है। क्योंकि 'घुसपैठ' हमेशा 'निगेटिव' होती है। वैसे आज राजनीति घुसपैठ ही कर रही है। तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन का ताजा उदाहरण हमारे सामने है। राजनीतिक घुसपैठ की ऐसी नंगई पहले कभी नहीं देखी गयी थी। जनता 'सरकार के दिनों में भी शांताकुमार और 'वाजपेयी का जो 'साहित्यिक रूप' सामने आया वह सम्पादकों की घटिया और टुच्ची राजनीति से ही प्रसूत था। मैं इसका सीधा विरोध करता हूँ।

'वाम' के परस्पर विरोधी शिविरों ने वाम साहित्यकारों के बारे में मेरा भ्रम-भंग कर दिया है। वहाँ भी मठाधीशी, जातिवाद, भाई-भतीजावाद और व्यक्ति-पूजा की घटिया मानसिकता विद्यमान है। मैं प्रतिबद्ध लेखक था और हूँ। लेकिन अब मैं, यह मानने के बाद भी कि वाम-दर्शन ही अकेला और एकमात्र दर्शन है जो समाज की गलीज को साफ करने में अहम् भूमिका निभा सकता है, वादात्मक प्रतिबद्धता के स्थान पर सहज और मानवीय प्रतिबद्धता को अधिक अधिमान देता हूँ और मानता हूँ कि मुक्तिबोध की अपेक्षा मैं प्रेमचन्द और हजारी प्रसाद द्विवेदी की चिंतना के अधिक निकट हूँ। और यह भी कि मैं प्रेमचन्द को मार्क्सवादी नहीं मानता हूँ। लेकिन अन्याय और शोषण का विरोध मैं प्रखरतम शब्दों में करना चाहता हूँ, करता रहा हूँ।

कौशिश : सातवें / आठवें दशक के किन लेखकों की रचनाएँ आपको सार्थक लगती हैं ?

देवेश : सातवें-आठवें दशक के लेखकों में मुझे परसाई और मन्नू भण्डारी ने सबसे अधिक प्रभावित किया है। हृदयेश, भीष्म साहनी, काशीनाथ सिंह, जगदीशचन्द्र और उषा प्रियंवदा दूसरे नाम हैं। और भी कई नाम हो सकते हैं जो इस समय याद नहीं आ रहे।

कौशिश : विदेशी कथाकारों में आपको कौन-से लेखक पसंद है अर्थात् आपके मन पर किन कथाकारों की गहरी छाप है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवेश : सच्चाई यह है कि मैंने विदेशी सृजनशील लेखकों को विस्तार से नहीं पढ़ा है। हां, गोर्की का अधिकांश साहित्य मैं पढ़ गया हूँ। और मुझे उनके कथ्य और केन्द्रीय भाव ने प्रभावित किया है। वैसे पुस्तकें-मैंने अवश्य पढ़ी हैं। जार्ज ऑरवेल का 'एनीमल फार्म', एलेक्स हैली का 'रूट्स' ए० जे० गोनिन का 'कीज ऑफ द किंगडम', सोल्जेनित्सन का 'कैंसर वार्ड' तथा हार्पर ली का 'टू किल द मॉकिंग बर्ड' आदि अनेक उपन्यासों ने मुझे बहुत कुछ दिया है। मॉम की शैली से भी मैं पहले काफी प्रभावित था।

जहाँ तक अपने मन पर कथाकारों की छाप का प्रश्न है, मैं नहीं समझता, मैने किसी विदेशी कथाकार का अनुकरण करने की कोशिश की हो। इसका कारण विदेशी और भारतीय परिवेश और स्थितियों की भिन्नता भी हो सकती है। दूसरे इस कांग्रेसी राज में हमारे समाज में इतनी विसंगतियां उभरी और बढ़ी है कि अपनी कृतियों के लिए उससे ही पूरा 'मसाला' मिल जाता है।

कौशिश : प्रेमचन्द ने एक स्थान पर लिखा है कि लेखक राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है, उसका पिछलग्गू नहीं। आप इस विषय में आज के लेखन के सन्दर्भ में क्या कहेंगे ?

देवेश : लिखने के लिए प्रेमचन्द ने चाहे जो भी लिखा हो, लेकिन सच्चाई यह है कि स्वयं प्रेमचन्द राजनीति के अनुयायी थे। वे गांधीजी और राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित थे, गांधीजी या राष्ट्रीय आन्दोलन उनसे प्रभावित नहीं था। साहित्य और साहित्यकार के बारे में बड़ी-बड़ी बातें स्वयं साहित्यकार ही करते हैं। यह अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बनने वाली बात । साहित्य समाज को प्रभावित नहीं करता, बस अंशों में प्रेरित अवश्य करता है। यह सही है कि बिना प्रभावित हुए प्रेरित नहीं हुआ जा सकता। लेकिन यह भी सही है कि यह प्रेरणा और प्रभाव अत्यन्त सूक्ष्म होता है नामालूम सा। वह भी मात्र प्रबुद्ध वर्ग पर। आज साहित्य के पाठक कितने हैं और जो पाठक हैं भी, उनमें से कितने प्रभावित हो पाते हैं और जो प्रभावित होते भी हैं उनमें से कितने उस प्रभाव का क्रियान्वयन करते हैं।

आज की स्थिति तो और भी विषम है। परसाई ने बिलकुल ठीक कहा है कि 'मनुष्य-समाज को राजनीति चलाती है। राजनीति ही हमारे भाग्य का निर्णय करती है।' लेखक को-जागरूक लेखक को राजनीति ही प्रेरित करती है। लेखक या साहित्यकार राजनीति को प्रभावित-प्रेरित नहीं करता। हाँ, पत्रकारिता-साहित्य कभी-कभी राजनीति को प्रभावित करने में सफल हो जाता है। १९७७ में जनता शासन को लाने में और १९८० में उसे गिराने में समाचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पत्रों और साप्ताहिकों ने अवश्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मैं खुद अपनी बात कहूँ। एक उपन्यास को लिखते-लिखते ही दूसरे उपन्यास का मसाला जुट जाता है—यह आजकी राजनीति का ही देय है। सो, मैं तो यही मानता हूँ कि लेखक के लिए या कह लो, साहित्य के लिए राजनीति ही मशाल का काम करती है। यह बात दूसरी है कि साहित्यकार कौन-सी दिशा अपनाता है, मशाल वाली या उससे विरुद्ध। इसका निर्णय वह अपने संस्कारों, परिवेश, अध्ययन-अनुशीलन और अनुभवों के आधार पर करता है।

कौशिश : क्या लेखक के लिए 'प्रतिबद्धता' अनिवार्य है? उस सम्बन्ध में आपकी टिप्पणी?

देवेश : साहित्य में 'प्रतिबद्धता' को मैं जन-सामान्य की पक्षधरता के रूप में लेता हूँ। हर क्षेत्र में सामान्य जन को ही अन्याय, शोषण, प्रपीड़न, अभाव और उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। सच्चे साहित्यकार को इसी वर्ग का प्रवक्ता बनकर आना चाहिए। 'प्रतिबद्धता' के अतिरिक्त लेखन का कोई अन्य उद्देश्य हो ही नहीं सकता। उदात्त मानवीयता का भाव और आदर्श इसी प्रकार की प्रतिबद्धता से पूरा हो सकता है। अतः 'प्रतिबद्धता' लेखक के लिए अनिवार्य नहीं, बहुत अनिवार्य है।

कौशिश : आज जो कहानियाँ लिखी जा रही हैं, कथ्य और शिल्प की दृष्टि से, आप उनके विषय में कैसा अनुभव करते हैं?

देवेश : आज के कथा लेखन से, मैं दोनों स्तरों पर, निराश नहीं हूँ।

कौशिश : अभी हाल ही में डॉ० नन्दलाल यादव द्वारा सम्पादित पुस्तक—'देवेश ठाकुर : व्यक्ति, समीक्षक और कथाकार' बाजार में आई है। उसके सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण बात बतलाना चाहेंगे?

देवेश : मेरी रचनाधर्मिता में जो भी महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है—उसका अधिकांश इस किताब में आ ही गया है। एक लेखक का इतना विस्तृत मूल्यांकन—जबकि वह लेखन की प्रौढ़ि पर भी नहीं पहुँच पाया है—उसके लिए हर्ष का विषय ही हो सकता है। डॉ० यादव ने बड़ी मेहनत और निष्ठा से इस कार्य का सम्पादन किया है। देश के लेखकों ने भी वस्तुपरकता और सहानुभूति के साथ मेरे लेखन के बारे में लिखा है। इससे मुझे खुशी ही हुई है। लेकिन सबसे ज्यादा खुशी इस बात की हुई है कि अब मुझ जैसे अपेक्षाकृत नए लेखकों का भी आकलन होने लगा है। इस परम्परा को आगे बढ़ना चाहिए ताकि वे लेखक, जो मेहनत और ईमानदारी के साथ, निर्गुट रहकर अपनी साधना कर रहे हैं, प्रकाश में आयें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिससे साहित्य के क्षेत्र में पनप रही गिरोहबाजी और साथ ही जड़ता का वातावरण टूटे।

कौशिश : अपनी प्रकाशित होनेवाली ताजा-तरीन कृतियों के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बतलायेंगे ?

देवेश : इस फरवरी के अन्त तक मेरे दो उपन्यास बाजार में आ जायेंगे—'अपना-अपना आकाश' और 'इसीलिए'। इन दोनों में मैंने वादात्मक धरातल के बदले मानवीय आदर्श को अधिक महत्व देने की कोशिश की है। 'अपना-अपना आकाश' को लिखने की प्रेरणा मुझे एक बहुत ही छोटे-से बिन्दु से मिली थी। बिहार में कुछ साल पहले पुलिस ने कुछ कैदियों की आँखें फोड़ डाली थीं। इसको लेकर बड़ा बवेला मचा था। लेकिन यह 'आँखों का फोड़ा जाना' मुझे बहुत से विचार दे गया और अन्त में मुझे लगा कि 'वास्तविक' अपराधियों को मृत्यु-दण्ड देने की अपेक्षा यदि उनकी आँखें फोड़ दी जायें या उनके हाथ काट दिए जायें तो यह मृत्यु-दण्ड से अधिक भयानक और इसीलिए अधिक सार्थक दण्ड होगा। 'मृत्यु-दण्ड' समस्या का समाधान नहीं है। पता नहीं, मेरा सोचना कहाँ तक ठीक है। लेकिन इस उपन्यास में मेरी नायिका प्रतिनायक की आँखें ही फोड़ती है और मुझे नहीं लगता, उसने कोई गलत काम किया है।

'इसीलिए' एक ऐसे नायक की कहानी है जो सभी भौतिक सुविधाओं के बाद भी सुखी नहीं रह पाता। मैंने कहना चाहा है कि भौतिक सुविधा सुख की गारंटी नहीं होती। वास्तविक सुख जीवन को सार्थक बनाने से मिलता है और जीवन तभी सार्थक बनता है जब वह अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी निःस्वार्थ भाव से जीया जाये। बस····

कौशिश : इन दिनों आप क्या कुछ नया लिख रहे हैं ?

देवेश : आजकल मैं अपना एक और उपन्यास पूरा कर रहा हूँ जन 'गाथा'। इसमें एक बार फिर मैंने नितान्त नये शिल्प का प्रयोग किया है। इस उपन्यास में लेखक की रचना-प्रक्रिया, उसका अपना पारिवारिक जीवन, सामयिक परिवेश और नायिका की मूल कथा साथ-साथ चलते हैं। इस शिल्प को निभाने में कई बार बहुत दिनों तक, लिखते-लिखते, रुक जाना पड़ा है। लेकिन अब सब आसान हो गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूसी कहानी

महिलायें

● चेखोव

फ्योदोर पेट्रोविच सार्वजनिक विद्यालयों के डायरेक्टर थे। वे अपने को न्याय-प्रिय एवं उदार व्यक्ति मानते थे। एक बार उनके कार्यालय में एक अध्यापक व्रेमेन्स्की आये।

—नहीं, महाशय, व्रेमेन्स्की! वे बोले—आपको इस्तीफा देना ही होगा, आपकी आवाज इतनी खराब हो गई है, कैसे आप अध्यापन का कार्य कर सकेंगे। आपकी आवाज कैसे खराब हो गई?

—मेरे पसीना निकल रहा था और मैंने उसी समय बियर पी ली था....धीमी आवाज में अध्यापक ने कहा।

—अफसोस! आप चौदह वर्षों से काम कर रहे हैं और एकबारगी यह बीमारी आ गई। अब आप क्या करेंगे?

अध्यापक ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

—परिवार है? डायरेक्टर महोदय ने पूछा।

—पत्नी और दो बच्चे। धीमे स्वर में अध्यापक ने उत्तर दिया।

शान्ति छा गई। डायरेक्टर महोदय मेज से उठकर कमरे में एक कोने से दूसरे कोने टहलने लगे। वे परेशान थे।

—समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ। उन्होंने कहा—अब आप अध्यापकी का काम तो नहीं ही कर सकेंगे। पेन्शन भी अभी आपको नहीं दी जा सकती और इस पद से हटाकर आपको अपने भाग्य पर छोड़ देना भी ठीक नहीं होगा। आपने हमारे साथ चौदह वर्षों तक काम किया है, हमको आपकी सहायता करना भी आवश्यक है।....किन्तु कैसे सहायता की जाये? मैं आपके साथ क्या कर सकता हूँ?

फिर सन्नाटा छा गया। डायरेक्टर महोदय टहलते रहे और सोचते रहे और व्रेमेन्स्की भी अपने दुःख में डूबे कुर्सी की एक छोर पर बैठे कुछ सोच रहे थे। एक-बारगी डायरेक्टर महोदय के चेहरे पर चमक आ गई:

—आश्चर्य है कि मैंने पहले ,यह क्यों नहीं सोचा! वह तेजी से बोले।—एक सुझाव आपके सामने रखता हूँ। अगले सप्ताह में आपके यहाँ अनाथालय से एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्ति इस्तीफा देने जा रहा है। यदि आप चाहें तो उसके स्थान पर काम के लिये प्रार्थना-पत्र दे दें।

व्रेमेन्स्की भी जो इस प्रकार की उदारता की आशा नहीं कर रहे थे, एकबारगी खुश हो गये।

ओर, अच्छा—डायरेक्टर महोदय ने कहा—आज ही प्रार्थना-पत्र दे दीजिये.... ।

जब व्रेमेन्स्की चले गये, फ्योदोर पेट्रोविच को शान्ति मिली और सन्तोष हुआ कि अब उनके सामने गिड़गिड़ाता अध्यापक न था। उन्हें यह महसूस करते हुये सुख मिल रहा था कि एक ईमानदार और उदार व्यक्ति की तरह उन्होंने न्याय किया है। किन्तु यह दशा अधिक देर तक कायम न रह सकी। जब वे घर लौटे और भोजन करने बैठे उनकी पत्नी नस्तास्या इवानोव्ना ने अचानक याद करते हुए कहा : ओह, मैं भूल ही गई थी। कल शाम को मेरे पास नीना सेर्गेयेव्ना आई थी और युवक के लिये सिफारिश कर रहीं थीं। उन्होंने सुना था कि हमारे अनाथालय में एक जगह खाली हो रही है।

– हाँ, किन्तु मैंने यह स्थान एक अन्य व्यक्ति को देने के लिये वायदा कर लिया है। डायरेक्टर महोदय ने कहा और परेशान हो गये। और तुम जानती हो कि मैं कभी कोई स्थान सिफारिश से नहीं देता हूँ।

—मैं जानती हूँ, किन्तु नीना सेर्गेयेव्ना के लिये, मैं समझती हूँ, अपवाद हो सकता है। वह हम लोगों से अपनों जैसा प्यार करती है और हम लोगों ने उसके साथ अभी तक कुछ नहीं किया है। मेहरबानी करके, फेद्या, इन्कार न कीजिये। आप उसे भी अप्रसन्न करेंगे और मुझे भी।

—और किसकी वह सिफारिश करती हैं ?

—पाल्जूखिन।

—कौन पाल्जूखिन ? क्या यह वही नहीं है जिसने नव-वर्ष में चात्स्की की भूमिका अदा की थी ? नहीं भगवान के लिये उसे नहीं।

डायरेक्टर महोदय ने खाना बन्द कर दिया, – नहीं, भगवान के लिये उसे, नहीं, फिर उन्होंने दोहराया।

—किन्तु, क्यों ?

—समझिये, वह युवा है और एक स्त्री से सिफारिश करा रहा है। फिर इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि वह किसी काम का व्यक्ति नहीं है। वह मेरे पास खुद क्यों नहीं आया ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोजन के बाद डायरेक्टर महोदय आराम कुर्सी पर अकेले अपने कमरे में लेटे थे और अपने पास आई हुई डाक देख रहे थे ।

—प्यारे फ्योदोर पेट्रोविच ! एक महिला ने उनको लिखा था, एक बार आपने कहा था कि मैं आदमियों को पहचानने में बड़ा होशियार हूँ, अब समय आ गया है कि आपने जो कहा था, उसकी पुष्टि करें । किसी दिन एक भला, युवक—पोल्जूखिन आपके पास आपके अनाथालय में नौकरी की दरख्वोस्त लेकर आयेगा । अच्छा आदमी है—और बहुत कुछ लिखा था ।

—नहीं, संसार के लिये नहीं । डायरेक्टर महोदय ने कहा ।

इसके बाद प्रत्येक दिन डायरेक्टर महोदय को कोई न कोई पत्र मिलने लगा, जिसमें पोल्जूखिन को नौकरी देने की सिफारिश होती थी । एक दिन प्रातः स्वयं युवा पाल्जूखिन नये काले सूट में, दाढ़ी, मोछें साफ किये घर आ गये ।

—नौकरी के सिलसिले में मैं केवल आफिस में मिलता हूँ । डाइरेक्टर महोदय ने रुखाई से जवाब दिया, जब उसने अपना निवेदन किया ।

—क्षमा कीजियेगा, धन्यवाद, मुझे कुछ परिचितों ने सलाह दी है कि घर पर ही बात करना मेरे लिए ठीक होगा ।

—तुम्हारे पिता धनी हैं—डायरेक्टर महोदय ने कहा और आपको नौकरी की कोई आवश्यकता भी नहीं है । क्यों आप यह नौकरी चाहते हैं ? इसमें तनख्वाह भी बहुत कम है । मैं समझता हूँ एक महीने में ही आप इस नौकरी से परेशान हो जायेंगे और छोड़ भागेंगे और दूसरे लोग हैं, जो इस नौकरी को पूरे जीवन चिपककर करना चाहेंगे ।··· ऐसे गरीब हैं कि जिनके लिए··· ।

—मैं इससे नहीं ऊबूंगा । सच तो यह है कि मैं इसको पाने के लिये हर सम्भव कोशिश करूंगा—पाल्जूखिन ने बात काटते हुए कहा ।

डायरेक्टर महोदय बिगड़ पड़े ।

—सुनो, उन्होंने तिरस्कारपूर्ण हँसी के साथ कहा । क्यों आप सीधे मेरे पास नहीं आये और बजाय इसके महिलाओं को परेशान किया ?

—मैं नहीं जानता था कि यह आपको पसन्द नहीं है । पाल्जूखिन ने उत्तर दिया और कुछ परेशान हुआ । किन्तु, सिफारिशी-पत्रों के अतिरिक्त मेरे पास प्रमाण-पत्र भी है ।····

उसने जेब से कागज निकाला और डायरेक्टर महोदय को दे दिया । प्रमाण-पत्र पर गवर्नर महोदय ने दस्तखत किये थे । मालूम हो रहा था कि गवर्नर महोदय ने भी स्वयं इसे नहीं पढ़ा था, बल्कि किसी हठी महिला से पिंड छुड़ाने की गरज से उस पर जल्दी से दस्तखत शायद बना दिये थे ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

—मैं अब कर ही क्या सकता हूँ। आदेश का पालन करूंगा। डायरेक्टर महोदय ने गहरी साँस लेते हुये कहा। कल प्रार्थना-पत्र दे दीजिये। अब तो यही करना ही है।

और जब पाल्जूखिन चला गया डायरेक्टर महोदय को बड़ी घृणा हुई।

—निकम्मा आदमी। डायरेक्टर महोदय ने कहा, फिर भी जो चाहता था करा लिया।

डायरेक्टर महोदय ने जोर से दरवाजे के बाहर थूक दिया, जिसके पीछे पाल्जूखिन छिपकर खड़ा हो गया था, फिर अचानक चौंक पड़े जब उन्होंने देखा कि एक महिला उसी समय उनसे मिलने के लिये कमरे में घुस रही है।

—मैं केवल एक मिनट लूंगी, एक मिनट।...महिला ने बात शुरू करते हुए कहा।—बैठ जाइये, जरा मेरी बात को ध्यान से सुन लीजिये।....सुना है आपके यहाँ एक जगह खाली।....आज या कल आपके पास एक युवक पाल्जूखिन आयेगा।....

महिला बोलती रही और डायरेक्टर महोदय उसकी ओर अनमनी आँखों से देख रहे थे, मानों अभी बेहोश होकर गिरने वाले हैं। वे देखते रहे और जब वह बात खत्म कर चुकी शिष्टता दिखाने के लिये मुस्करा दिये।

दूसरे दिन जब ब्रेमेंस्की उनके आफिस में आये, डायरेक्टर महोदय देर तक यह निश्चित न कर सके कि उनसे सब सच बात बता दी जाये या नहीं। वे न समझ सके कि अध्यापक से क्या कहें। उनके मन में आया कि अध्यापक से क्षमा माँग लें और सब सच-सच बता दें, किन्तु उनकी जबान कुछ ऐसी बँध गई थी मानो वे शराब के नशे में हो। वे एकबारगी लज्जा और अपमान महसूस करने लगे कि अपने ही आफिस में उन्हें एक ऊटपटांग गलत भूमिका अदा करने के लिए विवश होना पड़ रहा है। वे अपनी मेज थपथपाने लगे और एकबारगी ज़ोर से गुस्से से बोले :

—नहीं, मेरे पास आपके लिए कोई स्थान नहीं है! नहीं, नहीं! मुझे परेशान न कीजिए, मेरा पीछा छोड़िए, धन्यवाद!

और आफिस से उठकर चले गये।

—(अनुवादक)
सूर्यनारायण भट्ट, एडवोकेट
बाराबंकी (उ० प्र०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहानी

भूख

● ज्ञान प्रकाश विवेक

पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन के एक नम्बर प्लेटफार्म पर वह ग्यारह बजे से बैठा है। बेंच के एक कोने में दुबका सिमटा नन्दी बार-बार अपनी पेंट-कमीज की जेबों में हाथ डालता है, खाली हाथ निराशा बुनती उँगलियों के साथ वापिस लौट आता है।

सामने रेहड़ी वाला पूरियाँ तल रहा है। सड़े हुए घी की गंध से उसे अजीब किस्म की वितृष्णा रही है। पर आज यही गंध उसके खाली पेट पर चुनौती की इबारत लिख रही है। कई बार वह रेहड़ी का चक्कर लगा आया है। फूली हुई पूरियाँ आलू सब्जी आम और हरी मिर्च का अचार नन्दी की भूख को बागी बना रहे हैं। एक बार तो उसने पूछ भी लिया था—'कैसे दी हैं ?

'डेढ का पाँच ……दूँ ?'

'नहीं।'

नहीं कहते हुए उसे बड़ी मेहनत करनी पड़ी थी। सोचा कि उसके होठों पर चट्टानें रख दी गई हों। नन्दी पूरियों का भाव पूछ कर न जाने खुद को कैसी तसल्ली देना चाहता था। भाव पूछने-भर से पेट तो नहीं भर जाता ?

नल से पानी पीकर फिर उसी बेंच पर आ बैठा है नन्दी! अपने खिलाफ होकर बोलना आज उसे बड़ा सुखद महसूस हो रहा है। बार-बार- अपने-आप को कोस रहा है। अपने-आपसे वह ऐसे झगड़ रहा है जैसे उसके अन्दर कोई दूसरा नन्दी भी शरीक हो गया हो। मित्रों का कोई नुकसान हो जाता तो झट नन्दी उन्हें लापरवाह कह देता। और अपनी मिसाल देता—'हमें देखो, हमें। आज तक चवन्नी नहीं गिरी कहीं। मगर आज परिस्थितियाँ उसे ऐसे चौराहे पर खड़ा कर गई हैं जहाँ हर रास्ता जंगल को मुड़ जाता है। जहाँ वह आवाज लगाये तो आवाज खुद से टकरा कर रह जाती है।

वाराणसी स्टेशन से गाड़ी में चढ़ा तो उसने अपना पर्स जिसमें तीन सौ बयालीस रुपये, चण्डीगढ़ का टिकट और घड़ी ब्रीफकेस में रख दिये। अपनी 'बर्थ' पर लेटते हुए उसने खुद को आश्वस्त किया—'जेब तो कट सकती है लेकिन ब्रीफकेस तो सिर के नीचे रहेगा—इसे कौन हिला सकता है।' अभी वह लेटा ही था कि जेब में पड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रेजगारी 'स्लिप' होकर बर्थ पर आ गिरी थी। नन्दी ने रेजगारी उठाकर उसे भी ब्रीफकेस में डाल दिया। और फिर कमर सीधी करने की नीयत से लेट गया।

'आपका टिकट ?' टी० टी० ने झिंझोड़कर नन्दी को जगाया।

हड़बड़ा कर नन्दी उठा। आँखें मलते हुए ब्रीफकेस उठाने लगा। बेतहाशा चीख पड़ा—'मेरा ब्रीफकेस !' इधर-उधर, यहां-वहां देखा कम्पार्टमेंट का चक्कर लगा आया। एक-एक से पूछता फिरा—'भाई साब ! मेरा ब्रीफकेस तो नहीं देखा ?' ऊपर से नसीहत भरे, जहर उगलते फिकरे और सुनने पड़े नन्दी को।

'हमें दे गया था क्या अपना ब्रीफकेस ?'

'हम चौकीदार तो नहीं लोगों के सामान के······ खुद सो जायें, फिर ढूंढ़ते फिरें।'

'अजी जमाना अच्छा नहीं। खुद चौकस रहो तो किसकी मजाल सामान छू जाए।'

उपदेशों के पिटारे तो खूब खोले लोगों ने। सहानुभूति का एक फिकरा भी न बोला गया किसी से। एक ने तो अग्रिम चेतावनी दे दी—'भइये ! चंदे-वंदे का लफड़ा मत डालियो। किसी ने फूटी कौड़ी नहीं देनी।'

टूटता-पड़ता नन्दी पुनः अपनी सीट के पास आ खड़ा हुआ—'चैक्कर साँब। वो मेरा...··· पर्स ·· टिकट घड़ी····ब्रीफकेस ··सबका सब चोरी हो गया। लड़खड़ाती आवाज में भीगे शब्दों में नन्दी बोला। उसकी आँखों में नमी थी। चेहरा जर्द और जेहन में सैकड़ों बवण्डर।

चैक्कर नर्मदिल इंसान था। बोला-- कोई बात नहीं बेटा, दिल्ली तक इसी गाड़ी में रहूँगा। तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा।

चैक्कर की हमदर्दी पाकर नन्दी फूट पड़ा। बहुत देर तक सुबकता रहा।

दिल्ली आकर गाड़ी खाली हो गई। लेकिन नन्दी क्या करे उसे तो चण्डीगढ़ तक जाना था। चण्डीगढ़ जाने की समस्या अपनी जगह थी। लेकिन एक और प्रश्न जो मुंह फाड़े खड़ा था वह था प्रश्न भूख का ! कल रात उसने पेट में गड़बड़ होने के कारण कुछ नहीं खाया, था उसे क्या पता था रास्ते में इस कदर लुट जायेगा कि चार रोटियों के पैसे भी जेब में नहीं होंगे।

कुछ देर वह अन्यमनस्क-सा गाड़ी में बैठा रहा। थोड़ी देर बाद गाड़ी 'वाशिंग लाइन' की ओर 'मूव' हुई तो वह उतर पड़ा और एक नम्बर प्लेटफार्म के इस बेंच पर आ बैठा जहां वह अब सहमा-सा दुबका-सा बैठा है।

दो बज चुके हैं। नन्दी और भूख दोनों में एक कशमकश-सी है। खुद को भुलावें में डालने की गरज से कई बार वह नल से पानी पी आया है। खाली पेट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पानी पीना, लगता है जैसे पत्थर निगल रहा हो। भूख भोले बालक जैसी भी तो नहीं कि लोरियों से सो जाये। दोस्तों में नन्दी बड़कें मारा करता था. वह तीन दिन तक भूखा रह सकता है और अभी तो एक दिन भी नहीं हुआ कि जान हलक पे आ पहुँची है।

चण्डीगढ़ का ध्यान आते ही, रेत पर पड़ी मछली-सा तड़प उठता है। चण्डीगढ़ उसे इतनी दूर लगने लगा है जैसे कई रेगिस्तान बीच में आ पड़े हों।

दस नम्बर पर खड़ी अम्बाला पैसेंजर में हिम्मत करके चढ़ भी गया था वह। लेकिन चैक्करों की फौज देखकर नन्दी का दिल दहल गया। कौन मानेगा कि उसके पास चण्डीगढ़ तक का टिकट था। कौन मानेगा कि ब्रीफकेस, पैसे, घड़ी टिकट सब चुरा लिए गये। हर कोई एक मनघड़त कहानी समझेगा। उसी क्षण वह डब्बे से उतर आया। और फिर एक नम्बर के प्लेटफार्म में आ गया।

'लाजपत नगर में जगदीश भी तो रहता है।'—नन्दी यह सोचकर चौंक पड़ा। उसकी आँखें चमक उठीं। 'यह बात मैंने पहले क्यों न सोची'—उसने खुद को लतिआया। फिर निराशा ने उसे दबोच लिया—लाजपत नगर तक कैसे पहुँचूँ ?…… डी०टी० सी वाले इतने कृपालु तो नहीं।… चालीस पैसे जेब में पड़े मिल जाते तो…? दीर्घ श्वास ली नन्दी ने।… 'अगर पैदल चल पड़ूँ तो ? अरे हाँ दो-तीन घण्टों में पहुँच ही जाऊंगा। 'भूखे पेट इतनी दूर तक पैदल चलना है तो कठिन लेकिन और कोई चारा भी नहीं।' उत्साहित होकर उठ खड़ा हुआ।—'एक बार जगदीश का पता देख लूँ…ओह माई गॉड ! डायरी तो ब्रीफकेस में थी और ब्रीफकेस…!'

नन्दी धम्म-से बेंच पर आ गिरा। जैसे किसी पेड़ को आरे से काट दिया हो बीचो-बीच।

भूख की सोच होती भी कितनी तीव्र हैं ! जिस्म है कि निढाल जैसे मुद्दतों का बीमार हो। कुछ भी तो अच्छा नहीं लग रहा। अभी कुछ देर पूर्व एक नन्हा-सा बालक परिचय के तमाम किले तोड़कर नन्दी के पास चला आया था। अंकल कहकर खुद हँस दिया था। न शहरी औपचारिकता न कोई बनावट। आते ही अंकल का रिश्ता गाँठ लिया था उसने। और कोई वक्त होता तो नन्दी उसे उठा लेता। बाहों में भर लेता तोतली जबान में उससे बातें करता। लालीपॉप ले देता। लेकिन अब नन्दी ने एक पल के लिए उस बच्चे को देखा, होठों पर फीकी मुस्कान फेंकी और फिर मुंह फेर कर बैठ गया। बच्चा नन्दी की पेंट खींचकर अपनी ओर आकर्षित करने लगा। नन्दी मुंह फेर कर बैठा रहा। उस भोले बालक को क्या पता था कि उपेक्षा क्या होती है। उसकी मम्मी ने देखा तो झिड़क दिया—'मोंटू डोंट गो देयर।…बड़ा बेमुरव्वत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगता है यह आदमी' नन्दी ने उस औरत का धीरे से बोला गया यह फिकरा सुन लिया था।

प्लेटफार्म पर लोग आ-जा रहे हैं। कोई जाते-जाते ठिठक जाता। कुछ पास आकर पहचानते हुए कहता—'अरे नन्दी, तू यहाँ ?''''इतना गुमसुम''''क्या हुआ है तुझे ? कबसे बैठा है ? पहचाना नहीं मुझे मैं''''।' ऐसे खुश-फहम ख्याल नन्दी बुनता जा रहा है। अकेले सहरा में खण्डहर के दरवाजे थपथपाने की कल्पना बार-बार जन्म ले रही हैं। कोई नहीं रुकता कोई उसे नहीं बुलाता। सबके सब अपनी जमघट में व्यस्त हैं।

दिन भी तो पहाड़ जैसा लम्बा हो गया है। काटे नहीं कट रहा। सामने बिजली के बड़े से क्लाक को कम से कम उसने एक हजार बार जरूर देख लिया होगा इस बात का उसे खुद इल्म नहीं कि वह बार-बार वक्त क्यों देख रहा है। जबकि आज उसके लिए वक्त की कोई अहमियत नहीं।

नन्दी फिर रेहड़ी के पास जा खड़ा हुआ है। यह उसका पन्द्रहवाँ-सोलहवाँ चक्कर तो होगा ही। रेहड़ीवाले से अबकी नहीं रहा गया। आँखें तरेर कर बोला—बाबू मेरी रेहड़ी का मुआयना कर रहे हो क्या ? बहुत चक्कर लगा लिए रेहड़ी के।'''' कोई इन्सपेक्टर-विपेक्टर हो क्या ?

नन्दी की आँखों में एक उदास आसमान फैल गया। बड़ी कातरता से वह रेहड़ीवाले को देखने लगा। रेहड़ीवाले ने भी कंधे पर पड़े लाल अंगोछे से मुँह साफ किया, हैरानी से नन्दी को देखने लगा। नन्दी ने साहस बटोर कर पूछा—'पंडितजी ! पूरियाँ उधार दोगे ?'

'पूरियाँ !''''उधार ! कहकहा लगाकर रेहड़ीवाला हंस पड़ा। फिर बोला—'लाखों–हजारों का सौदा नहीं बाबू ! कुल डेढ़ रुपया वह भी उधार ?'

'वह भी तो मेरी जेब में नहीं हैं।' मरी-सी आवाज में नन्दी बोला।

झटके के साथ पूरी वाला पंडित, सब छोड़-छाड़कर नन्दी के पास आ खड़ा हुआ। बोला–तू''''तू सबेरे का भूखा है रे ! जब्बी तो कई बार चक्कर लगाये तने।'''' बार-बार आ खड़ा होता था रेहड़ी के पास।'''' भाव भी पूछा था न पूरियों का ?'''' बावले बताया क्यू नई कि तेरी जेब खाली है''''भूख लगी है तेरे कू। मेरी बी तो मती मारी गई। तेरे बार-बार आने का मतलब बी न समझ सका।'''' अरे ले खा पूरियाँ जितनी खानी हैं खा ! उधार की क्या बात है ! आठ-सात पूरियों से मौत नीं आने लगी मेरे कू !

आलू की भाजी और दसेक पूरियाँ पत्तल में रखते हुए वह बोला—ले खा ! देख क्या रिया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'पंडितजी.........!'

'हाँ मुझे पता है। कहेगा पूरियाँ ज्यादा हैं। कोई ज्यादा नहीं। खा ले चुपचाप।

रेहड़ीवाले पंडितजी का अपार स्नेह, अपार भावना, अपार सहानुभूति नन्दी के भावुक मन में तरलता पैदा करने के लिए काफी थे। नन्दी की नम आँखों से लगातार आँसू बह निकले। पराये शहर में पराया आदमी, मुश्किल वक्त में इतना अपनापन दिखाए आँसू कैसे न निकलते ?

रेहड़ीवाला पंडित हैरान था। नन्दी को तो पूरियों पर टूट पड़ना चाहिए था। वह भूखा था। कल रात का भूखा था। लेकिन वह कुछ सोचता कुछ बुनता कुछ उधेड़ता खड़ा था।

रेहड़ीवाले ने सोचा कि वह संकोचवश नहीं खा रहा पूरियाँ। उसने नन्दी की पीठ थपथपाते हुए कहा— बेटा सोच मत! पूरियाँ खा ले।

बड़ी मुश्किल से वह तीन पूरियाँ ही खा सका। कुछ पल वहीं खड़ा रहा। धन्यवाद, आभार मेहरबानी जैसे शब्द कहना चाह कर भी न कह सका। स्वतः दो हाथ जुड़े पूरी वाले पंडित जी की ओर, और फिर उसी बेंच की ओर बढ़ा चला आया मानो कोई चट्टान धीरे-धीरे सरक रही हो।

नन्दी ने अपने आपको टटोला। पहले से कहीं ज्यादा कमजोर महसूस करने लगा था खुद को, उसे लगा वह हार गया है—खुद से, अपनी भूख से, भूख के इम्तहान से, अपने संकल्प से। एक संघर्ष जो उसने भूख के खिलाफ सुबह से जारी किया था अब खत्म हो गया है।

●

प्रतियोगिता मंच पर प्रस्तुत—

ज्ञानोदय

सामान्य अध्ययन पर आधारित एक मात्र हिन्दी मासिक
प्रधान सम्पादक—रामेन्द्र कुमार मालवीय
सम्पर्क—मु० कार्यालय–९० अ/ १२ द/२
बाघम्बरी गद्दी; अल्लापुर, इलाहाबाद–६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लम्बी कहानी

डोली

● वासुदेव

इस बार बहुत दिनों के बाद मैं अपने गाँव जा रहा था। इसलिए गाँव के प्रति विचित्र विचित्र किस्म की उत्सुकताएँ थीं। एक उत्सुकता यह भी थी कि, 'देखें, इस बार गाँव में क्या-क्या परिवर्तन हुए? किस-किस की तरक्की हुई? कौन-कौन मजदूर बने? इस बार मजदूरों की गाँव में क्या स्थिति है? मालिक लोग अब उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं? आदि आदि?

और कुछ इसी तरह के प्रश्नों से दिमाग भरा था। कुछ अन्य बातें भी थीं, पर वे सब गौण थीं। गाँव पहुँचते-पहुँचते शाम हो गयी थी। जाड़ा का मौसम कहाँ जाता? हाथ-पाँव धोकर अलाव के पास बैठ गया। पिताजी वहीं थे। माँ भी थी। उन्हीं से गाँव के बारे में बातें करने लगा। तभी एक वृद्ध को लाठी टेकते हुए अपनी ओर आते देखा। अंधेरा था, फिर भी मैंने उनको पहचान लिया। मैंने दूर से ही कहा—"पाँव लागीं रघुबर चाचा!"

उन्होंने भी वहीं से अपना दायाँ हाथ हवा में हिलाते हुए कहा—"खुश रह बाबूजी। शंकर जी बनाये रखथून।" और वे आकर अलाव के पास पुआल पर बैठ गए। किन्तु जिस खुशी के साथ उन्होंने मुझको दुआएँ दी थीं, अलाव के पास बैठने के बाद, मैंने देखा, उनके चेहरे पर वह खुशी नहीं थी। मैं कुछ पूछता तभी उन्होंने ही मुझसे पूछा—

"अकेले अईलह कि सबको साथ लईलह?"

"सबको साथ लाए हैं, चाचा! छठ मनाना है न।" इतना कहकर मैं फिर उनकी ओर देखने लगा। उत्सुकता थी कि वे फिर कुछ पूछेंगे, पर कुछ नहीं बोले। उन्होंने एक गहरी साँस ली। उसे छोड़ा। फिर उन्होंने अपना सर नीचे झुका लिया। तभी मैंने पूछा—"चाचा जी छठु भैया कहाँ हैं? घर पर या आसाम?"

तभी सहसा उनकी आँखों में आँसू झलक आए। उन्होंने अंगोछा से आँसू पोछते हुए कहा—"का बताएँ बाबू।"

वह न तो घर पर है और न आसाम ही।"""वह तो जेल में है।"

मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मैं सहसा उदास हो गया। मैंने उसी भाव में पूछा—"सो क्यों चाचा? क्या किया था उन्होंने? वह तो वैसा आदमी नहीं है।"

किन्तु मेरे इतना पूछने का परिणाम यह हुआ कि रघुबर चाचा देर तक रोते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहे। मैं भी देर तक अवाक् रहा। फिर उन्होंने छठ्ठु की पूरी कहानी ही सुना डाली। कहानी कहते-कहते काफी रात होगयी। मैंने उनको अपने ही घर खाना खिलाया। गरबी चाची के लिए भी कई रोटियाँ बँधवा दी। काफी रात गए वह अपने घर लौटे। पर छठ्ठु की कहानी सुनने के बाद मेरे अन्दर जो तूफान शुरू हो चुका था, वह तेज ही होता रहा। मैंने पिता जी से छठ्ठु के बारे में पूछा। उन्होंने भी कुछ विचित्र बातें छठ्ठु के बारे में बतायी। फिर कुछ बातें माँ ने बतायी। और इस तरह उन लोगों से छठ्ठु के बारे में पूरी बातें जान लेने के बाद उसकी पूरी कहानी ही दिमाग में सिमट आयी। फिर तो इस खुराफाती दिमाग ने उसे कहानी के रूप में इस तरह गूँथ दिया। प्रस्तुत है छठ्ठु की वही कहानी।

●

रघुबर महतो पत्नी को छाता और कमीज थमाते हुए, खाट में धँस गए और अँगोछा से ललाट का पसीना पोंछते हुए कहा—"छठ्ठु की माँ, पहले पानी तो पिलाओ। तुमने तो बेटी के खातिर मेरी जान ही ले ली। लगता है, आजकल बेटी पैदा करना एक तरह का अपराध है। दहेज का बाजार इतना गरम है कि बेटी वालों की जान पर आ पड़ी है।...ओह! इतनी परेशानी!"

गरबी को समझते देर न लगी कि इस बार काम बन गया है। तभी तो वह इस तरह से बोल रहे हैं। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह झटके से अन्दर गयी। छाता कमीज को एक ओर रख दिया। एक हाथ में पानी से भरा लोटा और दूसरे में ताड़ का पंखा लिए हुए बाहर निकली। फिर पास आकर पानी नीचे रखकर पंखा झलती हुई बोली—"लगता है, इस बार काम बन गया। इस बार का जतरा ठीक रहा।...इसीलिए न कहती हूँ कि जब कभी बाहर निकलो तब मेरा मुँह देख लिया करो। स्त्री के दर्शन कितने शुभ होते हैं।" इतना कह कर वह एक बार मुस्कुरा उठी।

तभी रघुबर ने कहा—"हाँ, जतरा तो ठीक रहा। एक बेटी है। भगवान ने लाज रख ली। लड़का अच्छा पटा। खेत-बाड़ी तो नहीं है, पर अपनी जमीन में एक झोपड़ी है। तीन भाई हैं। अपना वाला सबों में बड़ा है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि लड़का नीरोग है। शरीर से हिस्ट-पुष्ट। मिहनत कर कहीं भी दो पैसा कमा लेगा। भूखों मरने की नौबत नहीं आयेगी।" रघुबर महतो ने एक ही साँस में सारी बातें कह डाली!

गरबी उन्हें सुनकर काफी प्रसन्न हुई। वह खुश होती हुई बोली—"रहने को घर है न, तब हुआ। मर-मजूरी से दो पैसा कमा कर अपने घर में सुख से सोयेगी तो। सर्वांग नीरोग है, पहुँचा बना है, तो रोजी-रोटी मिल ही जाएगी। बेटी ही कौन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोढ़नी है। यह भी तो कहीं न कहीं से पेट भर कमा ही लाएगी।""गाँव कैसा है? बाबू लोगों का है?"

रघुवर ने खैनी मलते हुए कहा—"गाँव तो बहुत बड़ा है। बबुआन टोला में राजपूत, भूमिहार और ब्राह्मण हैं। दुसाध और मुसहर भी हैं। बाहर का काम तो वे लोग ही करते हैं। पर घर का काम इन्हीं लोगों को करना पड़ता है। अपने करते हैं या फिर घर की औरतें जाकर करती हैं। चलो, ठीक ही हुआ। लंगड़ी को भूखों मरने की नौबत तो नहीं आयेगी? बाबू लोगों की जूठन तो मिल ही जायेगी।" वह फिर खैनी मलने लगे।

पर जितने उत्साह के साथ रघुवर उन बातों को कह गया था, गरबी उतनी ही उदास हो गयी थी। वह सहसा कहीं दूर अतीत में खो गयी। "आज से दस साल पहले की बात है। तब दुलारी मात्र पाँच साल की थी। एक दिन दोपहर के समय जोरों की आँधी चल रही थी। वह गई थी ठाकुर के बगीचे में आम का टिकोरा लूटने। ठाकुर के खूँखार बाप ने तब ऐसा झटहा चलाया था कि इसका एक पाँव ही टूट गया था। तभी से वह लँगड़ी बन गयी। लोगों ने इसे लँगड़ी ही नाम रख दिया।""भगवान ने इसको जो रूप दिया था, यदि यह लँगड़ी नहीं होती, तब जरूर कोई पैसेवाला ब्याह लेता। पर अब तो बाबू लोगों की बेटी, पतोहू घर में घुसने भी नहीं देंगी।""पेट में बच्चा रहने पर लूलों, लंगड़ों के दर्शन अशुभ जो होते हैं।""वे लोग राजपूत-ब्राह्मण ठहरे। नेम-टेम करने वाले। वे लोग क्यों लंगड़ी को अन्दर घुसने देंगे। बाहर ही खेतों में मजूरी करेगी।""घर का काम थोड़ा आसान होता है। बाहर का काम तो बस! धूप में जलते रहो। बरसात में भीगते रहो। ठंढ के मौसम में ठंड से काँपते रहो।" दुलारी की माँ काफी उदास हो चली थी।

तभी रघुवर महतो ने कहा—"चिन्ता छोड़ो छठु की माँ। बेटी को जनम दे सकते हैं, करम नहीं। वह तो भगवान के हाथ में है। इसके भाग में जो लिखा होगा, उसे हम तुम टाल नहीं सकते।" फिर उसने खैनी को होठ के नीचे रखकर दोनों हाथों से ताली बजाते हुए कहा—"दिन ठिकाना भी हो गया है। बैशाख बदी दूज को बारात आयेगी। बारात क्या आयेगी। पाँच जन आयेंगे। भार ही तो उतारना है। कौन बाबू साहब की बेटी ब्याहनी है।"

किन्तु रघुबर की बातें गरबी को लग गयी थीं। उसने झट से कहा—"फिर भी है तो बेटी की शादी। धन नहीं तो शौक भी नहीं? आखिर दरवाजे पर पाँच जन के हाथ तो धुलाने होंगे।""आज तो मालकिन ने छठुआ को कहा भी है कि वह बहन की शादी में पूरा राशन-पानी देंगी। मालिक भी आने वाले हैं। वह यदि दुलारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2.

की शादी की बात सुनेंगे तो कपड़ा-लत्ता का भी उपाय कर देंगे। मालिक मालकिन दोनों का दिल दरियाव है।"

किन्तु गरबी की ये बातें रघुवर को न जँची। उसने जरा खीझते हुए कहा—"तुम कैसे समझोगी छठु की माँ ? मैंने उमर बीता दी उनका वह कर्ज भरते। अब बेटा गुलामी कर रहा है। बेटी की शादी में यदि उन्होंने कुछ मदद ही कर दी तो कौन सा बड़ा काम कर दिया ? गुलामी से मुक्ति तो नहीं दे दी। जिन्दगी भर जी-हजूरी तो करनी ही पड़ेगी।.... वही शहर में लोग मजूरी करते हैं, तो पेट भर कर दस-पाँच रुपये बचा भी लेते हैं। पर यहाँ तो दिन-रात की बेगारी की मजूरी है—सवा सेर अनाज तथा ढकने के लिए गज भर कपड़ा।....लोग कहते हैं कि देश स्वतन्त्र है। हो सकता है ! पर हम तो आज भी गुलाम ही हैं।"

पर रघुवर की बातें गरबी को बेकार की लगी। उसने जरा रूखाई से कहा—"यह तो मालिक की कृपा है, जो पेट भर अनाज भी मिल जाता है। कम से कम भूखों मरने से तो बचते हो। नहीं तो आज किसको कौन पूछता है ? गाँव में तो कितने को मजदूरी भी नहीं मिलती। लोग भूखों मरते हैं। यह तो मालिक की कृपा है जो भर जून मजदूरी देते रहते हैं।"

पर उसकी बातें रघुवर को तीर-सी चुभ गयीं। वह चीख उठा—"घुट-घुटकर मरने से भूखों मरना कहीं बेहतर है। कम से कम गुलामी का जुआ तो कंधे पर नहीं पड़ता। पशु-पक्षी भी स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। हम लोग तो आदमी हैं।.... तुम कैसे समझोगी दुलारी की माँ ! जिस समय तुमने इस घर में पाँव रखे थे, तब हम बिल्कुल टूट गये थे। नहीं तो हम लोग भी कभी अच्छे किसान थे। आज जब उन दिनों की याद करता हूँ, तब हृदय फटने लगता है। मर जाने की इच्छा होती है। मर जाने की....।" इतना कहते-कहते रघुवर रोने लगा। उसने फिर आगे कहा—"किसान कैसे मजदूर बनता है, इसका हम एक उदाहरण हैं। हम लोग इसे भोग चुके हैं।" वह फिर रोने लगा।

तभी मालिक का नौकर रमुआ आया और कहा—"चूरा का धान तरा पड़ा है। किसी को साथ लेकर मालकिन ने बुलाया है। इतना कहकर रमुआ चला गया। वह देर तक यही सोचती रही कि किसको साथ ले जाए। फिर यह सोचकर कि दुलारी की शादी की बात भी तो मालकिन को बतानी है, वह दुलारी को ही साथ लेकर चल पड़ी। छठु हल खोले आ रहा था। उसे देखते ही रघुवर को याद आया कि भैंस खोलने का वक्त हो गया है। वह भी डंडा लेकर चल पड़ा।

●

गरबी दुलारी को साथ लेकर जिस समय मालकिन के पास पहुँची, मालकिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चूरा कूटने का जुगाड़ जुटा रही थी। वह गरवी को देखते ही झभक उठी—"बिना हाँक भेजे सुनती ही नहीं। अब तुम लोगों को बुलाने के लिए अलग से नौकर रखना पड़ेगा, समझ में नहीं आता कि तुम लोगों की आँखों पर चर्बी छा गयी है या ध्यान कहीं और चला गया है।"

मालकिन अभी कुछ और बोलती, पर तभी बीच में ही गरबी बोल उठी—"मालकिन, दुलारी की शादी ठीक हो गई है। रमपुरवा में एक लड़का है। अभी-अभी तो छठु के पिता ठीक करके लौटे हैं। उसी से देर हो गई।" तभी मालकिन की बहू बाहर आयी। वह गर्भवती थी। गरवी की बातें सुनकर मालकिन के अन्दर दया-भाव उमड़ आया था, पर बहू पर ध्यान जाते ही वह बरस पड़ी—"सो तो ठीक है, पर लंगड़ी को साथ में क्यों लाई? गाँव में कोई और नहीं मिली थी? देखती नहीं बहू को, ऐसी घड़ी में क्या लूलों लंगड़ों के दर्शन अशुभ नहीं होते?"

मालकिन की बातों से गरबी के होशो-हवास गुम हो गए। वह कांपने लगी। आँखों के सामने दुलारी का सारा भविष्य ही नाच उठा। तभी अन्दर से निकलते हुए मालिक ने कहा—"अब ये सब बातें पुरानी पड़ गयी राजन की माँ कि लूलों-लंगड़ों के दर्शन से पेट का बच्चा भी लूला-लंगड़ा ही होता है।" और इतना कहकर उन्होंने दुलारी पर आँखें गड़ा दीं। वह दुलारी के एक-एक अंग को निहारने लगे। फिर उन्होंने कहा—"दुलारी जन्मजात लंगड़ी थोड़े है। इसने तो इधर आकर अपना एक पाँव तोड़ लिया है।" उन्होंने गरवी की ओर मुँह करके फिर पूछा—"तो क्या बेटी की शादी ठीक हो गई, दुलारी की माँ? क्या दिन-ठिकाना भी हो गया?" दुलारी की माँ ने सारी बातें सच-सच बता दी।

मालिक ने फिर आगे कहा—"चलो अच्छा हुआ एक बड़ा बोझ उतर गया। पर अभी तो दुलारी कमसिन है। कच्ची उम्र में शादी करना ठीक नहीं।" इतना कहकर मालिक ने एक भूखी दृष्टि दुलारी पर डाली, जैसे भूखा भेड़िया अपने शिकार को देखता है। दुलारी मालिक की आँखों से सहमकर सिकुड़ गई। तभी मालिक ने गरवी से पूछा—"लड़का कैसा है? देह हाथ से ठीक है न?"

"लड़का तो ठीक ही है मालिक। तीन भाइयों में सबसे बड़ा है। देह हाथ से नीरोग है। खेती बारी तो नहीं है पर रहने भर की जमीन है। उसी में अपना घर है।" दुलारी ने पहली बार अपने भावी पति के बारे में इतनी बातें सुनी थी। वह मन ही मन मालिक का गुणगान करने लगी थी जिनके कारण उसको अपने भावी पति के बारे में इतनी जानकारी मिली थी। वह मन ही मन फूल उठी थी यह सोचकर कि लूली-लंगड़ी को तो लूला-लंगड़ा या फिर गूंगा-बहरा पति मिलते हैं। पर यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो मेरा सौभाग्य है कि वैसा पति मिला। वह अन्दर ही अन्दर फूल की तरह खिल उठी। चेहरे पर भी मुस्कान की हल्की रेखा उभर आयी।

तभी मालिक ने एक बार फिर भूखी आँखों से दुलारी की ओर देखा। फिर गरबी से कहा—"अभी तो समय है। चिन्ता-फिक्र मत करना। हम सब निबाह देंगे। किसी चीज की दिक्कत नहीं होगी।...हाँ, जरा दुलारी को दालान पर भेज देना।" और इतना कहकर वे वहाँ से चल पड़े।

कब से सिकुड़ी-सहमी दुलारी की जान में जान आयी। मालिक की बातों से गरबी की हिम्मते तिगुनी बढ़ गयी थी। वह मन ही मन फूल उठी—"चलो। मालिक सब निबाह देंगें। इससे बढ़कर और क्या होगा"?....छठु के बाबू जी तो मुझे कुछ समझते ही नहीं। आज मैं चलकर पूछती हूँ। थोड़ी सी ढील दे दूँ तो शादी की सारी तैयारी धरी रह जाए"। फिर सब चूरा कूटने लगीं।

ठाकुर सिंह जब दालान की ओर बढ़े तो उनके अन्दर एक तूफान उठा हुआ था, जो शांत होने का नाम ही नहीं लेता था। उन्होंने आज तीन वर्षों के बाद दुलारी को देखा था। तब फटी पुरानी चिथरी में लिपटी दुलारी जिसके बदन पर मैल की एक परत बैठी रहती थी। माथे का केश चिड़ियों का घोसला बन गया था। उसमें कहीं कोई आकर्षण नहीं था। पर आज दुलारी वह कंचन की प्रतिमा लग रही थी जिस पर से मैल की परत हट गई थी। थोड़ा सा भी तपा देने पर उससे दिव्य-सौंदर्य फूट पड़ेगा। "यदि लंगड़ी नहीं रहती तो इसे हथिया लेने में बुरा नहीं था।"... पर लंगड़ी होने से ही क्या ? एक सुन्दर नारी के सारे गुण तो भरे पड़े हैं।....शादी होकर चली जायगी, तब दूसरे गाँव के बाबू लोग जी भर कर खायेंगे।" ठाकुर सिंह इस सोच में ऊब-डूब हो रहे थे कि रमुआ ने आकर कहा—"मालिक, छठुआ शहर गया है। रात गये वापस होगा।"

ठाकुर सिंह को सहसा क्रोध हो आया। वह आँखें लाल-पीली करते हुए रमुआ से बोले—"जाने दो साले को। आता है तो पूछता हूँ।" वह कुछ और बोलते, पर तभी दिमाग में दुलारी की तस्वीर कौंध गई। वह क्रोध का घूंट अन्दर ही अन्दर पीते हुए फिर बोले—"जाओ, तुम माल-जाल का सानी-पानी करो।" रमुआ चला गया। वह फिर दालान पर चक्कर काटने लगें।

तभी दुलारी एक हाथ में पानी से भरा लोटा और दूसरे में पकाए हुए भुट्टों से भरी 'दौरी' लिए हुए पहुँची। ठाकुर सिंह कोठरी में पलंग पर जा लेटे। दुलारी टेबुल पर दौरी और पानी से भरा लोटा रखती हुई बोली— मालकिन नाश्ता भिजवायी हैं।"

ठाकुर सिंह ने अपनी नजर दुलारी पर फेंकी। फिर उन्होंने कहा—"अच्छा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही किया तुमने । भूख भी लगी है । हां, जरा पांव दबाओ ।" दुलारी झुककर पांव दबाने लगी । तभी ठाकुर साहब ने कहा—"दुलारी, तुम तो अब दुल्हन बन कर पिया के घर चली जाओगी । फिर मेरे पांव कौन दवाएगी ?" भोली-भाली दुलारी ठाकुर सिंह की बातों से शरमाकर झेंप गयी । तभी उन्होंने कहा – "अच्छा बोलो, शादी में तुमको क्या-क्या चाहिये ?" दुलारी ने इस बार घूंघट की ओट से एक बार मालिक की ओर देखा । सहसा उसकी आँखें मालिक की आँखों से टकरा गयी तथा वह शरमा गई तभी मालिक ने पूछा—"देखा था तुमने ? मैंने लालवती को शादी में कितने सामान दिये थे ? गहनों से लाद दिया था । दो-दो बक्सों में कपड़े थे ।" दुलारी अपनी आँखों से ये सब देख चुकी थी कि किस तरह दुलहिन बनी लालवती गहनों से लदी थी । वह उसी अतीत में खो गई । उसके दोनों हाथ क्षण भर के लिए रुक गये । वह क्षण-भर के लिये भूल गई कि वह मालिक के पांव दबा रही है । ठाकुर सिंह अपने इस अचूक प्रहार पर खिल उठे । वह झट से उठ बैठे तथा दोनों हाथों से दुलारी को पकड़ कर उसको अपनी गोद में बैठा लिया । फिर तो उसके यौवन को मसलते हुये उसके कोमल गालों पर कई चुम्बन ले लिये । दुलारी की हालत ठीक वैसी ही हो गई थी जैसी किसी चिड़िया की होती है, जो अचानक बाज की चपेट में आ जाती है । डर से उसका सम्पूर्ण शरीर कांप उठा । वह चाह कर भी डर के कारण जोर से चीख न सकी । छुड़ा कर भागने में भी अपने को असमर्थ पा रही थी । जड़वत् मालिक की गोद में पड़ी रही । तभी उन्होंने कहा—"घबराओ नहीं । तुम अभी बच्ची हो ।··· धीरे-धीरे सब कुछ समझ जाओगी । तब बेहद आनन्द मिलेगा । मैं तुमको लालवती से भी सुन्दर गहने बनवा दूंगा ।" पर उनको समझते देर न लगी कि दुलारी बहुत डर गई है तथा उनके उस प्रलोभन का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है । डरी-सहमी दुलारी मालिक की गोद में वैसी ही पड़ी थी जैसी मिट्टी की गुड़िया । तभी ठाकुर सिंह ने अपनी जेब से पाँच-पाँच के दस नोट निकाल कर दुलारी को देते हुए कहा—"लो, इसे रख लो । इससे अपने शृंगार के सामान खरीद लेना ।" पर इस बार भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । वह ज्यों की त्यों पड़ी रही जैसे उसके शरीर में प्राण ही नहीं हो । पर वह कब तक सब्र करते । उन्होंने झटके से दुलारी को पलंग पर पटक दिया । फिर दोनों हाथों से उसके कठोर वक्ष को मसल दिया । वह सहसा जोरों से चीख उठी । फिर तो उन्होंने लाख समझाया, पर वह चुप नहीं हुई । अन्त में उन्होंने अपना अंगोछा उसके मुंह में ठूंस दिया तथा अपनी बाहों में उसे दबोच लिया । तभी उन्हें बाहर गरबी की आवाज सुनाई पड़ी । वह बाहर से ही 'दुलारी-दुलारी' चिल्ला रही थी । उनका बंधन ढीला पड़ गया । उन्हें गरबी पर ऐसा क्रोध आया कि बन्दूक उठा कर शूट कर देने की इच्छा हुई । पर अब समय वैसा नहीं रह गया है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैसा सोचकर वह क्रोध का घूंट पीकर रह गये। तभी माँ की आवाज सुनकर न जाने दुलारी में कैसी शक्ति आ गई कि वह एक झटके से मालिक के बाँह पाश से अपने को मुक्त कर पलङ्ग के नीचे आ गई। फिर तेजी से दौड़कर माँ के पास जा गिरी। सारा शरीर भय से काँप रहा था, मानो वह बाघ के मुँह से बच निकली हो। गरबी को सारी बातें समझते देर न लगी। यह शंका उसको पहले से ही थी। तभी तो वह वहाँ आई थी। पर वह कुछ करने से असमर्थ थी। वह भी रोने लगी। ठाकुर सिंह ने बाहर आते हुए कहा—"कुछ नहीं हुआ है। वैसे ही जरा पाँव दबाने को कहा तो डरकर रोने लगी बच्ची है। जरा समझा बुझा देना।" और वह फिर अन्दर लौट गये। गरबी ने रोती हुई दुलारी को उठाकर छाती से लगा लिया। फिर उसे साथ लेकर घर की ओर चल पड़ी।

रात को छट्ठु जब घर लौटा, तब रोज की तरह पहले वह बहन के पास गया। दुलारी अचेत चटाई पर पड़ी थी। माँ ने कहा—"इसे छोड़ दो। थकी-माँदी है। मनों चूरा जो कूटना पड़ा है।" माँ के कहने पर छट्ठु वापस हो गया। फिर लुंगी के खूंट से पाँच रुपये का एक नोट निकाल कर माँ की ओर बढ़ाते हुए कहा—"लो माँ, इसे रख लो। यह आज की कमाई है।" पर माँ का हाथ रुपये लेने के बजाये काँप उठा। आँखों में आँसू छलछला आये। छट्ठु ने कहा—"आज हल जोतकर पीपल की छाया में बैठा आराम कर रहा था। एक बाबू ने स्टेशन तक अपना सामान पहुँचा देने को कहा। मैं झट तैयार हो गया। सामान माथे पर लादकर स्टेशन को चल पड़ा। उन्होंने पाँच रुपये दिये।"

पर माँ उदास होती हुई बोली—"तब तो तुम आज शाम को मालिक का काम करने नहीं गया।"

"तो क्या हुआ? रात-दिन तो उन्हीं का बेगार करता हूँ। एक शाम नागा ही हो गया तो क्या हुआ? रमुआ के द्वारा तो कहला दिया था।" आज से पहले छट्ठु यदि इस तरह की बातें कहता तो उसकी माँ बरस पड़ती। पर आज तो वह खुद मालिक के व्यवहार से नाखुश थी। वह चुपचाप छट्ठु के लिये खाना लाने चली गई।

उस दिन छट्ठु को जो पाँच रुपये मिले थे, उस दिन से उसका ध्यान सदा शहर की ओर दौड़ने लगा।

एक बक्सा को स्टेशन तक पहुँचाने का पाँच रुपये मिले जबकि रात दिन खून-पसीना एक करने का मालिक देते हैं पेट-भर अनाज। छट्ठु अब नियमित रूप से स्टेशन, हाट, बाजार आदि का चक्कर लगाने लगा। कभी पन्द्रह, कभी बीस, कभी दस तो कभी पाँच रुपये प्रतिदिन उसे मिलने लगे। उसने सप्ताह दिनों में ही पच्चास रुपये कमा कर माँ को दे दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर रोज-रोज काम में नागा होना, भला मालिक कब तक बर्दाश्त करते। एक तो वह उसी दिन से नाराज थे तथा सदा मौके की तलाश में रहते थे। कभी-कभी दुलारी के लालच में वह बहुत उदार बन जाते थे। पर लाख कौरा फेंकने पर भी दुलारी को न फँसते देख वह भी झल्ला उठे थे। फिर भी कभी-कभी उन्हें इस बात का सन्तोष हो आता था कि गरबी एक दिन जरूर समझा-बुझाकर दुलारी को तैयार कर लेगी तथा उनके पास भेज देगी। किन्तु सप्ताह पर सप्ताह गुजर गए, उनकी वह आशा भी व्यर्थ सिद्ध हुई। यह सब उनके लिए असह्य था क्योंकि शादी का दिन भी करीब आ रहा था। एक दिन उन्होंने छठ्ठु को सुना दिया—"तुम्हें अब शहर की हवा लग गई है। काम में जी लगता ही नहीं।""बाप, दादे को तो किसी तरह हम लोगों ने निबाह दिया। पर अब तुम्हें निबाहना मुश्किल है। तुम चाहो तो काम छोड़ दो। मैं कोई दूसरा हरवाहा रख लूंगा।"

छठ्ठु तो कब से इस दिन की प्रतीक्षा में था। वह तो कब से भगवान से मालिक की गुलामी से मुक्ति की कामना कर रहा था। उसने आव देखा न ताव, मालिक को कह दिया "ठीक है मालिक! आज से ही आप मुझे 'उकरीन' दे दीजिए। मैं हिसाब भी नहीं लूंगा।"

मालिक छठ्ठु की बातों से घबरा उठे। उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि जिसकी बहन की शादी सर पर हो, वह इतनी जल्दी जवाब दे देगा। छठ्ठु का दो टूक जवाब सुनकर उन्हें भी कुछ सोचना पड़ा। वह कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद दिखावटी सहानुभूति जताते हुए बोले—"अच्छा, तो बहन की शादी तक निबाह लो। तुम जानकर भी काम छोड़ दोगे, फिर भी गाँव वाले मुझे ही हँसेंगे।" सीधा-सादा छठ्ठु मालिक की इस चाल को न समझ सका। उसने भी बहन की शादी तक निबाह देना ही उचित समझा। उसे भी आशा बँध गई कि बहन की शादी के बाद मालिक की गुलामी से उसको पूरे परिवार के साथ मुक्ति मिल जायगी।

उस दिन से छठ्ठु मालिक का काम और जी लगाकर करने लगा। यहाँ तक कि शहर या स्टेशन जाना भी छोड़ दिया। अब तो सबको आशा बंध गई कि मालिक ने जब कह दिया है, तब अवश्य निबाह देंगे। पर गरबी को मालिक से अब नाममात्र की भी आशा नहीं थी। मालिक की उस दिन वाली हरकत से वह बिल्कुल निराश हो गयी थी पर इस बात को वह अपने ही अन्दर दबा रखी थी।

तभी एक रात ठाकुर सिंह ने गरबी को अपने दालान पर बुलाया। उस रात छठ्ठु मालिक के खलिहान में सोया था तथा रघुवर मचान पर। गरबी पहले सीधे घर पहुँची, फिर दालान पर गई। मालिक पलंग पर पड़े थे। वह पास ही जमीन पर बैठ गई। तभी ठाकुर सिंह ने कहा—"मैंने एक जरूरी काम से तुमको बुलाया है। मुझे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विश्वास है तुम मेरा वह काम अवश्य करोगी ?" और इतना कहकर वह एक शिकारी की तरह उसे घूरने लगे। गरबी दोनों हाथों को जोड़कर गिड़गिड़ाती हुई बोली—"क्यों न करूँगी मालिक ! आप तो हम सब के अन्नदाता ठहरे। भला आपका…।"

"तो आज रात भर के लिए दुलारी को मेरे यहाँ पहुँचा दो। इसके एवज में तुम जो कुछ भी चाहो, मुझसे माँग लो।" उन्होंने बीच में ही कह दिया था। बिल्कुल निःसंकोच भाव से। निर्भय और निश्चिन्तता के साथ।

"आप यह क्या कह रहे हैं मालिक ? दुलारी तो आपकी बेटी है।…उस पर आप कैसी नजर डालते हैं।…एक तो वह लंगड़ी है, फिर आप उसे किस नरक में…। नहीं-नहीं ! आप ऐसा मत कहिए मालिक…। मैं आपकी हर बात मानने को तैयार हूँ, पर यह काम मत…।" वह रोने लगी थी।

तभी ठाकुर सिंह ने सिरहाने से सौ का एक नोट निकालकर उसकी ओर फेंकते हुए कहा—"लो, इसे रख लो। शादी के पहले और दूँगा।" पर रुपये देखते ही वह सर हिलाती हुई ना, ना करती रही तथा पीछे हटती गयी। तभी उन्होंने पलंग पर से ही उस पर जोरों से लात का प्रहार किया। चोट खाकर वह वहीं पीछे की ओर गिर पड़ी। दीवाल से टकराकर सर फूट गया। खून निकलने लगा। वह देर तक कराहती-सिसकती रही। तभी उन्होंने सिंह की तरह गुर्राते हुए कहा—"साली, अपने तो दस रुपये में सब कुछ देती रही, पर बेटी के खातिर सौ रुपये पर भी थूकती है। जिन्दगी भर यही साली उसकी रक्षा करेगी।" पर तब तक वह कमरे से बाहर निकल चुकी थी। रोती सिसकती, एक हाथ से फूटे हुए सर को पकड़े हुए। खून रोकने का प्रयास करती हुई।

सबेरे जगपतिया ने सारी बातें रघुवर तथा छठ्ठु को बता दिया। सुनते ही छठ्ठु का खून खौल उठा।

वह ठाकुर से निबट लेने के लिए बौखला उठा। पर असमर्थ था। करता क्या ? बहन की शादी जो सर पर थी। शादी के बाद तो दुलारी चली ही जाएगी। तब साले क्या कर लेंगे ? वह खून का घूंट पीकर रह गया। पर सबों को विश्वास हो गया कि मालिक अब शादी में कुछ भी मदद नहीं करेंगे। दिन भर किसी ने मुँह में कुछ भी नहीं डाला और न कोई मालिक के काम पर ही गया। सबके सब शादी की चिन्ता से परेशान थे। दिन भर गाँव में घर-घर दौड़ते रहे। किसी ने भी दो पैसे देने का आश्वासन नहीं दिया, उल्टे लोग व्यंग करते—"जिसके यहाँ सारा खानदान जिन्दगी खपाया, उससे माँगो न। मैं कौन तीत-मीठ जानता हूँ, जो मदद करूँ। साल भर में एक दिन भी तो मेरे यहाँ बेगारी नहीं की। भला किस खुशी में मदद करूँ।" वे सब सुनकर एक बार कचमचा जाते। दुबारा कुछ माँगने की हिम्मत ही नहीं होती। चुपचाप दूसरे दरवाजे पर चले जाते। पर वहाँ भी कुछ इसी तरह के जवाब मिलते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर तीसरे दरवाजे पर जाते। वहाँ भी इसी तरह के जवाब मिलते फिर तो मुँह खोलने की हिम्मत नहीं होती। उल्टे पाँव लौट आते।

शाम हो आयी थी। तीनों बैठे इसी उधेड़-बुन में थे कि अब क्या कियां जाए। कोई तिथि बढ़ा देने की बात कहता। तो कोई इस साल के लिए शादी टाल देने की बात सोचता। पर गरबी इस बात को औरों से ज्यादा समझती थी। उसका विचार किसी तरह से दुलारी की शादी कर देने का था। तभी लड़के के गाँव का हजाम आकर रघुवर के हाथ में एक पत्र थमा दिया। छठु जाकर पत्र पढ़ने के लिए एक लड़के को बुला लाया। पत्र सुनकर सबके होशो-हवास गुम हो गए। गरबी अपने को न रोक सकी। वह फफक-फफक कर रोने लगी।

रघुवर की आँखें भी भीग आईं। छठु भी काफी उदास हो गया। बात ऐसी थी कि दुलारी लंगड़ी है, यह बात लड़के वाले को मालूम हो गयी थी। इसलिए उन्होंने लड़का को खुश करने के लिए पाँच सौ रुपये की माँग की थी। हजाम को सबों का बिलखना अच्छा न लगा। वह चलने ही वाला था, तभी छठु पागल की तरह उठा और उसी लड़के से जवाब लिखवा दिया कि वह पाँच सौ रुपये देने को तैयार हैं। पत्र लेकर हजाम चला गया। छठु ने उसको एक रुपये विदाई में भी दिए। फिर वह अन्दर जाकर खाट में धँस गया। पर दिमाग में एक ही बात थी कि इतने रुपये आयेंगे कहाँ से ?

करीब आधी रात का समय रहा होगा। छठु धीरे से खाट पर से उठा। एक हाथ में कुल्हारी ले लिया, फिर लोहे का हाथ भर एक राड और एक फावड़ा। पहले रघु को, फिर माँ को जी भर कर देखा। फिर बहन के पास आकर खड़ा हो गया। उसकी आँखें क्षण भर के लिए दुलारी के अस्त-व्यस्त शरीर पर जा टिकी। उसने पहली बार अपनी बहन के उस अस्त-व्यस्त शरीर को भर नजर देखा था। उसने देखा था कि उस अस्त व्यस्त शरीर में कितनी रौनक है ? किस तरह उससे यौवन फूटने-फूटने को है। वह अधिक देर तक उस बेपरद यौवन को न देख सका और झटके के साथ बाहर निकल आया।

रात अँधेरी थी। वातावरण भयावह लग रहा था। हवा बहती थी, पर धीरे-धीरे। छठु पहले मालिक के दालान पर गया। देखा, मालिक बाहर ही मच्छरदानी लगाए निश्चिन्त पड़े हैं। उसने मन ही मन सोचा कि "साले के गले पर कुल्हाड़ी दे मारूँ। सारा खेल ही खत्म हो जायगा। पर तब जेल जाना पड़ेगा। फिर बहन की शादी नहीं होगी।" वह सीधे घर की ओर चल पड़ा। वह पिछवारा गया। वह जानता था कि गलियारी वाला दरवाजा कमजोर है। पर जब वह वहाँ पहुँचा, तो दरवाजा खुला पाया। वह अन्दर आया तथा 'ओसारे पर आकर छुप गया। वहाँ से बहू का कमरा साफ दिखाई दे रहा था। आँगन में मालकिनी मच्छरदानी में पड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ख़र्राटे भर रही थीं। छठ्ठु उधर से निश्चिन्त हो गया। बहू के कमरे की खिड़की खुली थी। अन्दर ढिबरी जल रही थी। उसने झुक कर अन्दर देखा तथा देखकर दंग रह गया—बहू पलंग पर पड़ी थी तथा कोई पुरुष उसे रौंद रहा था। उसने उस पुरुष को पहचान लिया। वह सहसा चौंक उठा। पर ऐसे मौके पर शान्ति से काम लेना चाहिए, ऐसा सोचकर वह पास ही कोठी के पास छिपकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला। वह पुरुष बाहर आया। बहू भी पीछे-पीछे आयी। दोनों गलियारी तक साथ आए। छठ्ठु अच्छा मौका देख, बहू के कमरे में घुसकर पलंग के नीचे जा बैठा। पुरुष बाहर चला गया। बहू गलियारी का दरवाजा बन्द कर अपने कमरे में आयी। फिर कमरे का दरवाजा बन्द कर पलंग में जा धंसी। थकी-मादी थी। जल्द ही नींद आ गयी। कुछ ही क्षण बाद उसकी नाक बजने लगी।

छठ्ठु बाहर निकला। क्षण भर तक बहू को निहारता रहा। पहले भी उस जिस्म को उसनें अनेको बार देखा था। तब उसमें एक अलौकिक सौन्दर्य था। पागल कर देने वाली जवानी थी। जिसे देखने के लिए वह बार-बार बहू के पास आता रहता था। पर आज अचानक उस जिस्म से उसे घृणा हो आयी। उसके अन्दर आवाज हुई—"साला ठाकुर!"

"दूसरों की बहू-बेटी की इज्जत लूटते हो, पर अपनी बहू की इज्जत की चिन्ता नहीं! इसे जो दूसरा लूट रहा है।" उसने धीरे से बहू का दरवाजा खोला। वापस आकर बहू का बक्सा, जिसे वह कभी-कभी खोलते और बन्द करते देख लेता था—उठाकर तेजी से बाहर की ओर लपका। गलियारी में आकर फावड़ा से बक्से का कब्जा तोड़ डाला। फिर बहू के कुछ गहने को अपनी लुंगी में बांध कर, बक्सा को उठाकर बहू के पलंग के नीचे रख कर तेजी से बाहर की ओर भागा। वह गहनों को एक स्थान पर जमीन के नीचे दबा कर अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ा। अब उसके दिमाग में एक ही चिन्ता थी कि उन गहनों को कल किस तरह बेचा जाए, ताकि बहन की शादी हो सके। × × ×

सुबह से ही दुलारी की शादी की तैयारी चल रही थी। छठ्ठु जी-जान से बहन की शादी की तैयारी कर रहा था। पर उसके माँ-बाप यह सोच-सोचकर परेशान थे कि उसने पैसे कहाँ से लाए। उन्होंने कई बार उससे पूछा भी। तब छठ्ठु ने डाँटते हुए कहा - "अभी मैं बहन की डोली सजाऊँ कि तुम दोनों को पैसों का हिसाब दूँ।" दोनों अवाक् रह गये। फिर अपने काम में लग गए। पर चेहरे पर एक उदासी एक चिन्ता बनी रही। पास-पड़ोस के लोगों तक भी यह खबर बिजली की तरह फैल गयी कि ऐन मौके पर मालिक ने छठ्ठु को धोखा दे दिया, फिर भी वह बहन की शादी कर रहा है। कुछ लोग ईर्ष्या से इधर-उधर काना-फूसी भी कर रहे थे—"कल तक तो मरने की नौबत थी। आज शादी के लिए रुपये कहाँ से आ गए? पाँच सौ रुपये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तिलक में भी देगा।....कहीं हाथ तो नहीं मारा। पर वह तो वैसा नहीं है।" जितने मुंह, उतनी ही बातें। पर छठु कान में तेल डाले अपने ही काम में व्यस्त रहा।

संध्या समय डोली आ लगी। दुलारी दुल्हन बनी बाहर आयी। माँ के गले लग कर जी भर कर रोयी। फिर पिता के पाँव पर आ गिरी। फिर तो चिल्लाती हुई छठु के पाँव से लिपट गयी। छठु भी जी भर कर रोया। फिर सखियों ने दुलारी को पकड़ कर डोली में बैठा दिया। कहार डोली को पकड़ कर पैसे के लिए नखरा कर रहा था। दुलारी की माँ ने उसको एक रुपये दिए। फिर तो डोली चल पड़ी। सबकी आँखें गीली करके।

तभी सहसा झोपड़ी के पास एक जीप आ लगी। जीप से ठाकुर सिंह के साथ दारोगा जी उतरे। पुलिस भी थी। दारोगा जी के आदेश पर सिपाहियों ने डोली को घेर लिया। फिर तो डोली की तलाशी शुरू हुई। तभी छठु ने पागल की तरह जोरों से हँसते हुए पूछा—"क्या ढूंढ़ रहे हैं, दारोगा साहब? ठाकुर साहब की बहू के गहने?....वह डोली में कहाँ से आया। वह तो छठु के पास है।" फिर उसने ठाकुर सिंह से कहा—"क्या मालिक! बहू के गहने जाने का गम है कि बहन को आपकी चंगुल से छूटकर चले जाने का? अब वह समय चला गया ठाकुर साहब! अब आप खामोश हम गरीबों की बहू-बेटी की इज्जत नहीं लूट सकते।" उसने दो तीन-बार ठहाका लगाकर जोरों से हँसा। सब लोग अवाक् थे। दारोगा जी नये थे। वह खुद छठु की बातों पर आश्चर्यचकित हो रहे थे। दूसरा दारोगा रहता तो अब तक छठु को दो-चार बेंत जड़ देता तथा कितनी ही गालियाँ देता। पर वे चुपचाप छठु की बातों को ध्यान से सुन रहे थे। जैसे छठु के प्रति उनकी सहानुभूति हो। उनके चेहरे पर आक्रोश या क्रोध का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता था। तभी छठु ने पागल की तरह हँसते हुए कहा—"ले चलिए दारोगा साहब! मुझे पकड़ कर ले चलिए। मैंने चोरी की है। मैंने चोरी की है, बहन की शादी के लिए।...यह ठाकुर पैसे का लालच देकर उसकी इज्जत को बर्बाद करना चाहता था। क्या यह अच्छा नहीं हुआ कि मैंने उसके ही पैसे से बहन की इज्जत को बर्बाद होने से बचा लिया।...यदि ऐसा करना अपराध है तो मैं जरूर दोषी हूँ। आप मुझे ले चलिए।....हम गरीबों को और क्या चाहिए। यहाँ तो भूखों मरने की नौबत है।...हा, हा-हा हा-हा-हा।" और वह अट्टहास करते हुए जीप से जाकर लटक गया, जैसे कोई पागल हो।

●

कार्यालय—मंडलीय अभियन्ता दूरभाष
राँची—८३४००१
(बिहार)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहानी

अंतहीन

● राकेश 'विमल'

घर के सभी लोग सोए हुए हैं, लेकिन उसका रोम-रोम जाग रहा है। वह एक अटैची में धीरे-धीरे बिना कोई आवाज किए सामान लगाता जा रहा है। दो जोड़ी कपड़े पढ़ने लायक एक दो पुस्तकें""सर्टिफिकेट।

तभी बी० ए० की डिग्री उसका मुंह चिढ़ाने लगती है—"मेरे ही बलबूते पर घर से भागने का प्लान बना रहे हो""मुझसे क्या उम्मीद लगाए बैठे हो कि घर से भागते ही तुम्हारी रोजी-रोटी का प्रबन्ध कर दूंगी। तुम्हारे जैसे न जाने कितने ही डिग्रीधारी इस देश में भूखों मर रहे हैं""भूल जाओ इस पढ़ाई-वढ़ाई को""अगर जिस्मानी मेहनत कर सकते हो तो घर से भागो""वरना भूखे मरोगे""।"

"तो क्या मैं बेवकूफ था, जो तुम्हें पाने के लिए दिन रात पढ़-पढ़कर मैंने अपने शरीर को कंकाल कर दिया, अपने दिमाग को खोखला कर दिया। इस शिक्षा ने मेरी सोचने की शक्ति को खत्म करके रख दिया है। ये दिमाग तो मदारी की पिटारी के साँप की तरह हो गया है, यह व्यवस्था, यह समाज इसे मदारी की तरह नचाते रहते हैं।"

"तुम बुजदिल हो""तुम्हारे भीतर आग मर चुकी है""जिस देश के लोगों में आग नहीं होती हर उचित-अनुचित बात को अपनाते व मानते चले जाते हैं। वे शीघ्र ही गुलाम हो जाते हैं। वे गुलामों की तरह 'जी हाँ'-'जी हाँ' करते हुए अपनी प्रतिरोध-शक्ति पूरी तरह खो बैंठते हैं""" अट्टहास करते हुए डिग्री का आकार और चौड़ा हो जाता है।

वह डिग्री को अटैची में बन्द कर बिस्तर पर आ बैठता है। "आग कैसी आग। आग तो सोने में से खोट निकालने के काम आती है, लेकिन जब सारा ही खोट हो तो वहाँ आग क्या करेगी। यह व्यवस्था बिल्कुल नकारा हो चुकी है। इसमें सभी का इतना नैतिक-पतन हो चुका है कि इससे कुछ भी आशा करना मरे हुए से हँसने की उम्मीद करना है""।"

"तो क्या तुममें खोट नहीं है""घर से भागकर क्या तुम नई व्यवस्था तैयार कर लोगे। जब तुम अपने घर वालों की ही बात सहन नहीं कर सकते तो और लोगों को तुमने क्या बांट रखा है जो तुम्हारे ऊपर घड़ों स्नेह उंडेलेंगे! वहाँ भी तो इसी समाज के, इसी व्यवस्था से प्रभावित लोग हैं।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation; Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकिन वे इस तरह मेरे प्रति पूर्वाग्रहों से ग्रस्त तो नहीं होंगे··· वे बात-बात पर व्यंग्य तो नहीं करेंगे····जैसा मैं अपना प्रभाव जमाऊँगा वैसा ही उन पर असर होता चला जाएगा। वहाँ मेरी एक नई छवि उभर सकेगी।"

"लेकिन जब तुम्हारे पास कमाई का कोई साधन नहीं होगा, तुम फटेहाल होगे, तुम किसी के पास नौकरी के लिए गिड़गिड़ाओगे तो वह पहली ही दृष्टि में तो तुम पर विश्वास कर नहीं लेगा, वह तुमसे तरह-तरह के प्रश्न पूछेगा, उस समय क्या तेरी महत्वाकांक्षा को ठेस नहीं पहुँचेगी, उस समय क्या तेरा मूल्यांकन सही हो पायेगा।"

"दूसरों की अपेक्षा अपनों द्वारा किए गए व्यंग्य अधिक कष्ट देते हैं···।"

"यदि अपने व्यंग्य करते हैं तो दुःख सुख के भी वही भागीदार होते हैं, दूसरे नहीं।"

"लेकिन व्यंग्य करने की भी तो कोई सीमा होती है····जरा-सी बात पूछने पर ही दिल पर धारदार छूरियाँ चलाने का क्या मतलब है।" कल मैंने भैय्या से चक्की के आय-व्यय के विषय में थोड़ा-सा जानना चाहा था तो वे कैसे भभक कर बोले थे—"ये···आया····है चौधरी हिसाब-किताब पूछने वाला। कल तक हमने इसे पढ़ाया-लिखाया। आज हमें बेईमान बनाता है। अब छह महीने से दो-चार घंटे चक्की पर बैठने लगा है तो हमारे सिर पर एहसान करने लगा है। जिस दिन कुछ कमाएगा ··· देखूँगा।"

भैय्या के शब्द उसके सीने में इतने गहरे उतर गये थे कि उसने कुछ भी स्पष्टीकरण देना उचित नहीं समझा था। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलने को आतुर थी और वह व्यथित मन से बाहर निकल गया था।

सुबह वह काफी देर तक सोता रहा था। माँ ने उसे जगाते हुए कहा था—"जा बेटा, चक्की पर जा, बिना मालिक के नौकर भी ठीक काम नहीं करते। रात तेरे भैय्या भी देर से आए थे।"

"मालिक, कैसा मालिक···मुझसे ज्यादा तो हिसाब-किताब शायद नौकरों को ही पता होगा। वह भीतर ही भीतर कुनमुनाता रहा। फिर दृढ़ निश्चयात्मक स्वर में बोला था—माँ, मैं चक्की पर नहीं जाऊँगा अपना कोई अलग काम करूँगा"

"बेटे मिल-जुलकर काम किया करते हैं। वह तेरा बड़ा भाई है, अगर कुछ कह भी दिया तो भूल जा, बड़ा भाई तो बाप के समान होता है।" माँ गिड़गिड़ाई थी।

"बाप क्या बेटों की बातों का गलत अर्थ लगाता है। फिर अब मैं कोई बच्चा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो नहीं हूँ, बराबर का हूँ—अगर कुछ पूछ भी लिया तो क्या गुनाह कर लिया ।" वह चाहकर भी चीख नहीं पाया था ।

वह पूरा दिन चक्की पर नहीं गया था । अपने दोस्तों के साथ सारा दिन इधर-उधर घूमता रहा था । रात को भैय्या उसे देखकर चुपचाप अपने कमरे में चले गए थे ।

उसने सोचा था कि भैय्या उससे पूछेंगे कि वह पूरा दिन चक्की पर क्यों नहीं गया । उसका अहं तिलमिला उठा था ।

"क्या मैं अपना भी पेट नहीं भर सकता यदि उनका मेरे बिना काम चलता है तो मुझे ही क्या जरूरत पड़ी है मरने-खपने की । मैं भी पढ़-लिखकर क्यों आटे में लिपा-पुता रहूँ ।" सोचते हुए उसके हाथ अनायास ही अटैची की ओर बढ़ गए थे ।

"तो फिर घर से भागकर क्या करोगे"''क्या पहले से कुछ इंतजाम कर रखा है ।" एक भयानक अट्टहास उसके दिमाग को बर्फ कर देता है ।

"रिक्शा तो चला ही लूंगा", बर्फ थोड़ी-सी पिघलती है ।

"वाह क्या कहने आखिर इतना त्याग किसका जीवन बनाने के लिए कर रहे हो जो इतनी सुविधाएँ छोड़कर संघर्षमय जीवन अपनाने को तैयार हो ।" दिमाग का तापमान शून्य से भी नीचे चला जाता है ।

"भैय्या की छोटी-सी बात तो तुम्हें अखर गई लेकिन तुम्हें पढ़ाने के लिए जब उन्होंने भाभी के गले का हार गिरवी रख दिया था तो वह त्याग तुम भूल गए, जब वे सख्त बीमार थे तो माँ के बार-बार मना करने पर भी उन्होंने कालिज टूर के साथ तुम्हें माऊंट-आबू भेज दिया''' वह दरियादिली भूल गए । लानत है तुम्हारी जिन्दगी पर '' उनकी मेहनत का क्या यही बदला चुकाने जा रहे हो''''तुम्हारे इस प्रकार से भाग जाने पर क्या उनके दिल को गहरी ठेस नहीं पहुँचेगी । क्या भविष्य में कोई बड़ा भाई अपने छोटे भाई के लिए त्याग कर सकेगा ?" दिमाग पर फैला कोहरा अचानक हटने लगता है ।

वह जग में से एक गिलास पानी लेकर गटक जाता है । घड़ी की एक सूई गायब हो गई है । सभी लोग रजाईयों में दुबके पड़े हैं लेकिन उसे काफी उमस महसूस हो रही है ।

"हमारा घर बिखर जाएगा । सब कुछ बिखर जाएगा'''' । सब बरबाद हो जाएगा '' ।" माँ की बड़बड़ाहट उसका ध्यान खींच लेती है । वह धीरे से माँ की रजाई हटाता है । माँ का चेहरा आँसुओं से भीगा हुआ है । वह माँ के आँसू पोंछ लेता है और पैरों में सिर रखकर सुबकने लगता है । माँ के स्नेहिल हस्त-स्पर्श से उसका क्षोभ आँखों के रास्ते बाहर निकलने लगता है ।

३५ बी, गोविन्दनगर,
अम्बाला छावनी—१३३००१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहानी

बत्तीसवें बसन्त का पतझड़

कमलेश भट्ट 'कमल'

'कन्हैया मामा नहीं रहे' छोटे भाई से यह खबर पाकर एकबारगी तो विश्वास ही नहीं हुआ। फिर विश्वास हो भी तो कैसे? कन्हैया मामा ने अपनी जिन्दगी के अभी बत्तीस वसन्त ही तो देखे थे। विधवा मामी और दो छोटे-छोटे अनाथ बच्चे!.... कैसे क्या होगा?—सोचकर कलेजा बैठ गया। कुछेक क्षण के लिये सब कुछ थम-सा गया—आँखें पथरा गयीं, हाथ सुन्न पड़ गयें।

अभी कल दोपहर की ही तो बात है, मैं कमरे में बैठा घर के लिए एक पत्र लिख रहा था और तभी अप्रत्याशित रूप से भाई आ पड़ा था यह बुरी खबर लेकर। अधलिखा पत्र मैंने डायरी के पृष्ठों के बीच दबा दिया था और मन-मस्तिष्क हठात् मामा के साथ बीते दिनों की स्मृतियाँ टटोलने लगा था।....कमरे का पूरा वातावरण श्मशान की-सी खौफनाक खामोशी में डूब गया था। भाई को दाना-पानी पूछने की कौन कहे, पत्नी अलग चुप बैठकर मामा के बारे में विसूरने लगी थी। हालाँकि अपनी शादी के कुल दो वर्षों में उसे मामा के दर्शन का अवसर न आया था, लेकिन वह घर में अक्सर ही मामा की चर्चा सुनती आयी थी—दुबले-पतले, साधारण क़द-काठी के थे मामाजी! चुलबुले भी कुछ कम न थे, जब भी घर आते तो बच्चे उनका पीछा न छोड़ते थे।

"क्यों कुछ पता चला कि मामा को क्या हुआ था?" मैंने गुमसुम बैठे भाई को कुरेदकर कमरे के सन्नाटे को तोड़ने का प्रयास किया था।

"हाँ शायद दो-तीन दिन बीमार रहे थे" भाई ने जवाब दिया था। लेकिन मात्र दो-तीन दिन की साधारण-सी बीमारी में मामा का इस तरह चला जाना कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

मामा को मैं अपने होश संभालने से अब तक खूब नजदीक से देखता आया था। यूं तो मेरी उम्र उनसे सात-आठ साल कम थी, लेकिन वे हमेशा यार-दोस्तों की तरह मुझसे बात करते थे, स्नेह भी खूब देते थे।... जब मैं उन दिनों छोटा हुआ करता था और कक्षा ६-७-८ में पढ़ता होता था, मामाजी महीने-दूसरे महीने घर आया ही करते थे। घर दूसरे मामा भी आते थे लेकिन कन्हैया मामा की बात ही और थी। घर आने लगते तो हम बच्चों के लिए किलो-आध किलो मिठाई लाना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कभी नहीं भूलते थे। फिर घर पर चार-चार, पाँच-पाँच दिन रुकते थे। स्कूल और पढ़ाई से बचे समय में मामाजी के साथ बात करने, खेतों पर टहलने और गन्ना चूसने में खूब मजा आता था। मामाजी हाट-बाजार के भी बड़े शौकीन थे। कादीपुर जाते तो हमें भी साथ ले जाते और वो चाट-पकौड़ियाँ खिलाते की तबियत हरी हो उठती थी। दो-तीन रुपये की चाट तो हम लोग एक बार में आसानी से खा जाते रहे होंगे! मैं मामा की इस शाहखर्ची पर गर्व से फूला न समाता था।

'सिर्फ मेरे ही मामा ऐसे हैं, जो अपने भांजों को इतना चाहते हैं।' फिर उन दिनों जब अपनी पूंजी ले-देकर चालीस या साठ पैसों तक ही सीमित रहती थी, मामा जी द्वारा सिर्फ चाट-पानी पर एक बार में दो-तीन रुपये खर्च किया जाना मेरे लिए बहुत बड़ी बात थी।

उसके कुछ ही दिनों बाद मामा की शादी तय होने का पता चला था। माता जी मामी की शादी में उनके यहाँ गयी थीं और साथ ले गई थीं बड़े भाई साहब को। मैं अपनी दिली इच्छा के बावजूद भी मामा के यहाँ न जा सका था—बच्चा था न, इसलिये। बड़े भाई साहब मामा की शादी में बारात भी गये थे। मामा के यहाँ से वापस आकर उन्होंने मामी के यहाँ के स्वागत-सत्कार का जो बखान मेरे सामने किया तो मुँह में पानी भर आया। बड़े भाई साहब कहते थे कि 'वहाँ इतनी मिठाइयाँ खाने को मिलीं कि मेरा तो पेट ही खराब हो गया····आम तो बम्बई से मंगाये गये थे और जी भर खाने को मिले थे····खाने की तो पूछो ही न, मामी का घर क्या था; होटल बन गया था ····चाय-पान की तो गिनती ही नहीं थी···· बड़े भाई साहब की इन बातों को सुनकर मुझे उनके भाग्य पर ईर्ष्या होने लगी थी। जितना ही मैं मिठाइयों का शौकीन था, उतना ही ऐसी जगहों पर जाने से वंचित रह जाता था!

कन्हैया मामा की शादी सिर्फ स्वागत-सत्कार तक ही न सीमित रही थी। दहेज में बिना किसी माँग के, इतना कुछ मिला था कि पवरत (आस पास) में उसकी चर्चा आज भी होती है। लड्डू-खाझे, नानी ने जितनी दूर तक हो सका था, बँटवाये थे। गाँव-घर वालों की तो कुछ पूछिये न, पन्द्रह दिन तक मामी के घर मेला-सा लगा रहा था। लोगों को आश्चर्य और ईर्ष्या होती थी कि • नाना के घर तो बिना बुलाये लक्ष्मी चली आई हैं।" मामी जी भी साक्षात् लक्ष्मी जैसी ही थीं। उनकी भी तारीफ सुनी थी बड़े भाई-साहब से—एकदम गोरी-चिट्टी थीं · लेकिन लम्बाई मामा से थोड़ी अधिक थी। बातचीत में तो नम्बर एक थीं। खूब परेशान करती थीं बच्चों को······।

नानी तो निहाल हो उठी थीं ऐसी बहू पाकर और माम का पूछना ही क्या था! जिसकी उन्होंने कभी कल्पना तक न की थी, वह सब कुछ उन्हें अनायास ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिल गया था। लेकिन ये सारी खुशियाँ 'चार दिन की चाँदनी' ही साबित हुई थीं। क्योंकि शादी के पाँच-छः महीने बाद ही एक दिन खाना बनाते समय नायलान की साड़ी में आग लग जाने से मामी बुरी तरह जल गयी थीं। उन्हें अस्पताल ले जाया गया। कई दिन तक दवा चलती रही थी लेकिन मामी की बन्द आँखें किसी को देखने के लिए फिर से न खुल सकीं ···और मामा को उन्हीं हाथों से मामी की चिता को आग देनी पड़ी, जिनसे उन्होंने मामी की माँग में सिन्दूर भरा था। सुना था, चिता में आग देते समय मामा बिलख पड़े थे। मामा की उस स्थिति की कल्पना मुझे भीतर दूर तक झकझोर जाती है। ···और यहीं से शुरू हुआ था, मामा की जिन्दगी का एक और सफ़र, जो अन्ततः उन्हें मौत के करीब तक घसीट ले गया था।

× × × ×

मामी की मृत्यु के कई महीनों बाद तक मामा सामान्य नहीं हो सके थे। एक खौफनाक चुप्पी उन्हें हमेशा घेरे रहती थी। नाना-नानी लाख समझाते कि बेटा तुम्हारी दूसरी शादी कर देंगे, तुम अपना दिल इतना छोटा क्यों करते हो? कौन-सी तुम्हारी उम्र बीती जा रही है? लेकिन मामा की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हो पाता। ऐसे अवसरों पर मामा का धैर्य टूट जाता था और वे फफक कर रो पड़ते थे। वह नाना-नानी को कैसे समझाते कि जो प्यार और अपनत्व उन्हें मामी ने दिया था, वह दूसरा कोई नहीं दे सकेगा!

आदमी का हृदय यदि फूल की तरह मुलायम होता है तो पत्थर से अधिक कठोर भी हो सकता है। परिस्थितियाँ ही यह सब कर-करा डालती हैं। समय की पर्त हर दुःख-दर्द को मिटाकर, जिन्दगी को नये मोड़ पर ला खड़ा कर देती है। मामा के साथ भी यही हुआ····एक-दो-तीन साल बीत गये। इस बीच मामा ने 'बाम्बे आर्ट' का डिप्लोमा ले लिया था, लेकिन अपनी दूसरी शादी के बारे में अभी भी नहीं तय कर पाये थे।

मामा की कला में बड़ी रुचि थी। 'बाम्बे आर्ट' का डिप्लोमा उन्होंने इसीलिए लिया था कि किसी स्कूल में कला के अध्यापक बन जायेंगे और इस तरह रोजी-रोटी के बन्दोबस्त के साथ-साथ उन्हें अपनी कला को अभिव्यक्ति देने का अवसर भी प्राप्त होता रहेगा। इसके लिए उन्होंने कई एक जगह आवेदन किया। दो-एक जगह इण्टरव्यू भी दे आये। लेकिन फल वही 'ढाक के तीन पात' थे। हर जगह प्रबन्धकों और प्रधानाचार्यों की निहित स्वार्थपरता तथा पैसों के प्रति उनके मोह के चक्रव्यूह में एक लम्बे अरसे तक मामा की कला, निपुणता और मजबूरियाँ उपेक्षित होती रहीं। एक जगह तो मामा ने पाँच हजार रुपयों में सौदा तय भी कर लिया था लेकिन ऐन मौके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर किसी ऊँची बोली वाले के सामने मामा को फ़िर मात खानी पड़ गयी। इस तरह उन्होंने दो-तीन साल बेरोजगारी की हालत में दौड़ते-धूपते गुजार दिये, लेकिन सफलता न मिल सकी।

थक हार कर मामा ने अब अध्यापन-कार्य का विचार छोड़ दिया था और पिताजी के पास लखनऊ चले आये थे। उन दिनों मैं भी लखनऊ में ही पढ़ा करता था। मामा की नजर में पिताजी उन्हें कम से कम गुजर-बसर लायक कोई नौकरी तो दिला ही सकते थे और इसी फिराक में वे लखनऊ आये भी थे। लेकिन इस ओर पिताजी ने कोई ध्यान नहीं दिया। हो सकता है उनकी भी कोई मजबूरी रही हो?

कई एक दिन लखनऊ की सड़कों-गलियों में भटकने के बाद मामा ने अमीनाबाद में एक पेन्टर के यहाँ पेन्टिग का काम करने का फैसला किया और दो-तीन दिन काम पर गये भी। लेकिन अन्ततः वे वहाँ भी न टिक सके और अपने गाँव वापस चले गये। कारण था कि पिताजी को मामा का मुफ्त में खाना बहुत अखरता था। मामा अपने प्रति पिताजी के इस व्यवहार को भली-भाँति समझ गये थे। मुझे भी पिताजी का यह व्यवहार अच्छा न लगा था, किन्तु उस समय मैं भी कुछ कर पाने में असमर्थ था।

लखनऊ से वापस घर जाने के बाद मामा एक साल तक घर पर ही बेकार बैठे रहे। अब नाना को भी मामा का बेकार बैठे रहना अच्छा नहीं लगता था। वे सुबह-शाम मामा को दो-चार उल्टी-सीधी सुनाया ही करते थे। मामा को अपने भविष्य की चिन्ता बुरी तरह सता रही थी। शायद इसीलिए उनका मन खेती में भी न लगता था। नाना की बोली-बिसेड़ी को वे अपने मौन से पीते जाते थे। लेकिन कभी-कभार जब नाना उन्हें ज्यादा परेशान करते वे झल्ला भी उठते थे। एक बार तो आवेश में आकर उन्होंने घास पीटने वाला डण्डा नाना के ऊपर चला दिया था, जिसके लिए बाद में बहुत पछताये भी।

इन्हीं दिनों मामा की शादी के लिए भी कुछ लोग आने लगे थे। नाना-नानी ने सोचा कि दूसरी शादी है, कहीं देर न हो जाय और बात बिगड़ जाय। इसलिए उन्होंने मामा की दूसरी शादी कर देना उचित समझा। हालाँकि मामा टालते रहे थे कि कोई काम-धाम मिल जाय तो शादी ठीक रहेगी। लेकिन नाना-नानी के आगे उनकी न चल सकी और दूसरी शादी हो ही गयी।

× × × ×

नयी वाली मामी जी रंग-रूप में तो पहले वाली मामी से उन्नीस जरूर थीं, लेकिन गुण-शऊर में उनसे किसी भी तरह कम नहीं थीं। मामा ने कई बार अकेले में मुझसे उनकी खूब तारीफ की थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समय धीरे-धीरे बीतता रहा और मामा दो बच्चों के बाप भी बन गये, लेकिन उनकी बेकारी ज्यों की त्यों रही। शादी के कुछ दिन बाद तक तो नाना खामोश रहे थे, लेकिन उसके बाद वे मामा की बेरोजगारी को लेकर उनसे अक्सर ही उलझ जाया करते थे। उनके ताने अब मामा के वश के भी नहीं रहे थे। वे टूटते-से जा रहे थे। स्वास्थ्य भी खराब होता जा रहा था।

ऐसी बात भी नहीं थी कि घर में और कोई कमाने वाला नहीं था और पैसों की बड़ी तंगी चल रही थी, बड़े मामा जी अनाज का व्यापार करते थे; अच्छी आमदनी थी। कमाऊ पूत की घर में बड़ी इज्जत होती है। लेकिन कन्हैया मामा को अपनी बेकारी की वजह से बड़ी उपेक्षा सहनी पड़ रही थी। नाना द्वारा अपने प्रति किये जा रहे सौतेलेपन को मामा अच्छी तरह समझते थे और एक बाप का अपने ही बेटों में यह भेद भाव उन्हें बहुत अखरता था। पर वे कर भी क्या सकते थे? सिर्फ अपने तक ही सीमित होता तो सब कुछ सह लेते, लेकिन बीवी और दो छोटे बच्चों की जिम्मेदारियों के एहसास से उन्हें बड़ी घुटन होती थी। कभी हमेशा हँसते-बोलते रहने वाले मामाजी एक अजीब-सी चुप्पी में घिरे रहते थे। किसी बेरोजगार युवक की जितनी भी मानसिक यन्त्रणाएँ हो सकती थीं, वे सब मामा एक साथ झेल रहे थे। हालांकि खेती के कामों में वे पहले से ज्यादा रुचि लेने लगे थे।

इसी बीच मामा के गाँव का एक आदमी, जो बम्बई में रहता था, गाँव आया हुआ था। जब वह मामा से मिला तो मामा ने उससे अपनी सारी व्यथा-कथा कह डाली। उसने मामा से बम्बई चलने की तैयारी करने को कहा और अगले ही माह मामा बम्बई चले भी गये। लेकिन परेशानियों ने वहाँ भी उनका साथ नहीं छोड़ा। उस आदमी ने मामा को कपड़े की एक दूकान पर नौकर रखवा दिया जहाँ उन्हें हर माह तीन सौ रुपये मिल जाते थे। किन्तु बम्बई जैसे मँहगे शहर में तीन सौ रुपये एक आदमी के भरण-पोषण के लिए भी कम थे।

इधर नाना बराबर खबर लिया करते—'कोई काम मिला या खाली ही बैठे हो?' ....मामा सोच नहीं पाते कि घर को क्या जवाब दें! घर वाले तो पैसा और पैसा चाहते थे, जो उनके पास नहीं था। कुल मिलाकर डेढ़ साल गुजार दिये मामा ने बम्बई में, लेकिन घर भेजने के लिए एक पाई का भी बन्दोबस्त नहीं कर पाये। अब उन्हें अपनी स्थिति और भी दयनीय होती नजर आ रही थी और वे कुछ एक माह और बम्बई में रुककर अपने गाँव वापस चले आये थे। लेकिन इस बार मामा का स्वास्थ्य पहले से बहुत ज्यादा गिर गया था। बम्बई से वापस आने पर जब वे मुझसे मिले थे तो काफी हताश और निराश लग रहे थे। जब मैंने उनसे उनकी बीमारी के बारे में पूछा तो वे हँसकर टाल गये थे। लेकिन उनकी उस हँसी में दर्द-दर्द की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठोकर खाये, थके-हारे आदमी का दर्द झलक रहा था।… और उसके ठीक डेढ़ महीने बाद अचानक कन्हैया मामा के मर जाने की खबर कल छोटे भाई ने आकर दी थी।

आज सोचता हूँ तो लगता है कि कन्हैया मामा महज दो-तीन दिन की बीमारी में नहीं मर सकते। उन्हें तो मानसिक चिन्ता की बीमारी थी, जो पहली मामी की मृत्यु के बाद से उनके पीछे लग गयी थी। बेरोजगारी और मजबूरी के दिनों में माँ-बाप, भाई और रिश्तेदारों तक ने, जिन्हें वे अपना समझते आये थे, कोई ढाढ़स बंधाने के बजाय उन्हें दर-बदर ठोकरें दीं। इस पूरी व्यवस्था ने मामा को तिल-तिल कर जला दिया, उनका खून पी डाला और हड्डियाँ खोखली कर दीं।… कभी सोचता हूँ कि आदमी और व्यवस्था की इस लड़ाई में मामाजी हार गये, टूट कर बिखर गये…. लेकिन फिर सोचता हूँ कि मामाजी ने बड़े धैर्य और ईमानदारी के साथ इस संघर्ष को लड़ा और अन्ततः वीरगति को प्राप्त हुए। आखिर वे समस्याओं, परेशानियों और मजबूरियों से ऊबकर आत्महत्या भी तो कर सकते थे, लेकिन उन्होंने नहीं किया। वे व्यवस्था के खिलाफ बन्दूक भी उठा सकते थे, लेकिन नहीं उठाया। उन्होंनें व्यवस्था के हर पहलू, हर चौकी पर लड़ाई लड़ी और हर किसी को परीक्षा का मौका दिया, लेकिन सबके सब गद्दार और मक्कार निकले उनके अपने।

मैं भी सोचा करता था कि पढ़-लिखकर कुछ बनूंगा तो कन्हैया मामा के लिए भी कुछ न कुछ करूँगा। लेकिन अब जब कुछ करने के काबिल हुआ तो वे खुद ही हमें छोड़कर चले गये।

आज जब कन्हैया मामा नहीं रहे तो उनके वही अपने सम्बन्धी और रिश्ते-नातेदार मामी को ढाढ़स बंधाते हैं—'क्या हुआ जो कन्हैया नहीं रहे, हम जो तुम्हारे साथ हैं। किसी बात की कमी न होने देंगे। आखिर विधाता पर किसका जोर है।' तो यह सोचकर बड़ा दुःख होता है कि जैसे कन्हैया मामा ही सबके ऊपर बोझ बने हुए थे, जो उनके न रहने पर सभी उनके टूटे-बिखरे परिवार को सँभाल लेने के लिए तैयार हैं। मामा की आत्मा को भी कष्ट होता होगा ढोंग और दिखावे की छलभरी इन बातों से, जिसे उन्होंने अपनी जिन्दगी में निकट और खूब निकट से देखा था और सबमें से उन्हें मिली थी—स्वार्थ और पैसे की घिनौनी बू!

—प्रौढ़ शिक्षा कार्यालय
बरेली (उ० प्र०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम्हारे शब्द

• गम्भीर सिंह पालनी

कभी ये शब्द थे तुम्हारे—
विश्वास करना सीखिए।

तुम्हें तो लगेगा
बात पुरानी हो गई
मगर अब भी
ताजा है वो मेरे जेहन में।

विश्वास किया है मैंने
अब भी तुम पर
वहाँ तक
छले जाने की सीमा
कहते हैं लोग जिसे
और सच कहूँ
कभी-कभी मुझे भी
वैसा ही लगता है
फिर भी
भेज नहीं पाता मैं खुद को
विश्वास की सीमाओं से परे।

किसी के कहे शब्दों को
संजोकर रखना
खुद को खोकर भी
कैसा लगता है
मैंने जाना है।

सम्पर्क : नैनीताल बैंक लिमिटेड, कोर्ट रोड, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कलम मेरी और कालम उनका

[इस अंतरंग वार्ता के लिए पत्रकार एवं साहित्य अध्येता हेरम्ब मिश्र को लिया गया है जो पत्रकारिता और साहित्य पर एक पैनी दृष्टि रखते हैं। प्रयाग के एक कोने में दलित बस्ती के मध्य साधनारत हेरम्ब मिश्र का परिचय उनका वक्तव्य स्वयं देगा। अब प्रस्तुत है हेरम्ब मिश्र से 'अनुगमन' के सम्पादक की अन्तरंग वार्ता।]—सं० अनुगमन

□ पत्रकार और साहित्यकार को आप किस दृष्टि से देखेंगे ?

हेरम्ब मिश्र—बहुत सुन्दर ! आपने मेरी रुचि का प्रश्न किया है। आपके प्रश्न का सीधा-सीधा जवाब यह है कि दोनों को मैं सामाजिक दृष्टि से देखता हूँ। इसी दृष्टि से देखना भी चाहिए। वैसे मैं न पूर्ण पत्रकार हो सका हूँ और न साहित्यकार। आरम्भ में मैं एक सफल साहित्यकार बनना चाहता था, लेकिन बन गया पत्रकार। बहुत से लोगों ने कहा है 'विफल साहित्यकार, पत्रकार बन जाता है।' और यह कुछ माने में सही भी है। किन्तु पत्रकार को साहित्यकार होना ही चाहिए यह अलग बात है।

□ एक सफल पत्रकार से आप क्या आशा करते हैं ?

हेरम्ब मिश्र—पत्रकार के मस्तिष्क को विश्वकोश होना चाहिए। लेकिन क्या यह सम्भव है कि एक व्यक्ति का मस्तिष्क विश्वकोश हो जाय ? असम्भव है। हालांकि विज्ञान ने यह कहा है कि मस्तिष्क में तीन सौ करोड़ से अधिक कोशिकाएं हैं। अगर ये सारी कोशिकाएँ सक्रिय हो जायें तो मनुष्य तीन सौ करोड़ से अधिक शब्द याद रख सकता है। उसके बावजूद हर व्यक्ति अपूर्ण है। फिर भी मैं यही कहूँगा कि पत्रकार को बहुज्ञ होना चाहिए। सफल पत्रकार के अध्ययन में पूर्ण विराम कभी नहीं आता। वह यावज्जीवन विद्यार्थी होता है। पत्रकारों के ज्ञान के सम्बन्ध में मैन्सफील्ड ने कहा है—

'Something of everything and everything of something.'

□ जिस समय पत्रकार अपने कर्तव्य का सही रूप में निर्वाह करता है, उस समय वह एक रचनाकार की भूमिका निभाता है। वहाँ पत्रकारिता और साहित्य दोनों में अलग-अलग विभाजन करना बहुत कठिन काम है। हेरम्बजी, इस पर आपकी क्या राय है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हेरम्ब मिश्र – देखिए ! अगर मेरी बातों से आप यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मैं इन्हें दो विधायें मानकर चलता हूँ तो वह अंशतः गलत है और सही भी । क्योंकि साहित्य से मतलब अगर—कविता-कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी और ललित निबन्ध आदि से ही हैं, तो सचमुच यह एक अलग विषय है । लेकिन जब साहित्य को व्यापक अर्थ में लेंगे तो, जो कुछ लिखा जा रहा है, जो कुछ बोला जा रहा है, जो कुछ अश्रुता है या सुना नहीं गया है लेकिन चिन्तन में है, वह भी साहित्य है । जैसे—कम्युनिस्ट साहित्य, लेनिन या मार्क्स के सेलेक्टेड वर्क्स और माओ के तेरह-चौदह वाल्यूम जो हैं, वे सब साहित्य हैं । यदि व्यापक अर्थ में पूछते हैं, तो कोई भेद नहीं है ।

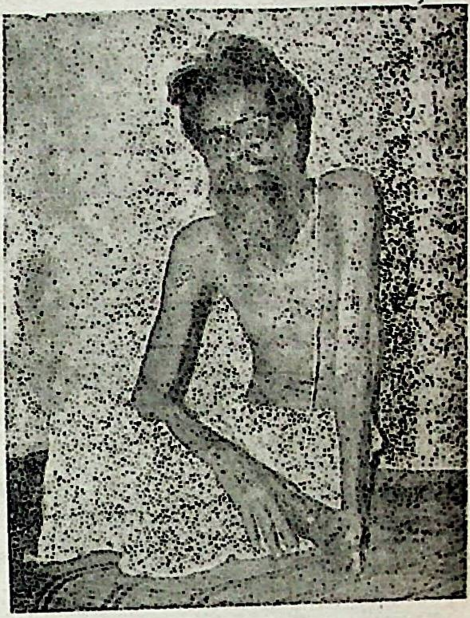

हेरम्ब मिश्र

☐ क्या सीमित अर्थ में साहित्य और पत्रकारिता में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है ?

हेरम्ब मिश्र—जहाँ तक सीमित अर्थों की बात है, वहाँ भी बहुत से लोग छिटक जाते हैं और चाहते हैं कि साहित्य को पत्रकारिता से अलग मान लिया जाय । यहीं नहीं, सम्पूर्ण विश्व में यह प्रश्न उठा है कि क्या साहित्यकार का पत्रकार होना और पत्रकार का साहित्यकार होना जरूरी है ? यह प्रश्न आखिर क्यों उठा ? यह कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सका है कि पत्रकारिता और साहित्य में कोई सम्बन्ध है या नहीं । खासकर हिन्दुस्तान की स्थिति को देखते हुए बस आप सोचिए और समझिए । वैसे पत्रकार के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह साहित्य अध्येता या रचनाकार हो, यह मान-सा लिया गया है । इससे हमारे यहाँ के ८० प्रतिशत तथाकथित पत्रकारों को साहित्य से मुक्ति मिल गयी । वैसे यह चीज भयावह है । अब प्रश्न यह है कि मैं क्या हूँ ? जब मैं ईमानदारी से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोचता हूँ, वैज्ञानिक दृष्टि से सोचता हूँ और विश्लेषणात्मक बुद्धि से सोचता हूँ तो मैं अपने को पाता हूँ कि पत्रकारिता का उस साहित्य से गहरा सम्बन्ध है, जिसके अन्तर्गत—कहानी, कविता व उपन्यास आदि आता है।

□ ८० प्रतिशत पत्रकारों को यह छूट मिल गयी कि उनको साहित्य से कोई मतलब नहीं है। आखिर यह छूट दी किसने ?

हेरम्ब मिश्र—यह विवाद ने दी।

□ गलत मान्यता से साहित्य व पत्रकारिता की सही वस्तुस्थिति थोड़े ही बदल जायेगी। आखिर भविष्य में सर्जक समाज उसे किस रूप में लेगा ?

हेरम्ब मिश्र—देखिए! विज्ञान और साहित्य में कल्पनाशीलता का महत्व है। पहले कल्पना की जाती है और बाद में सत्यापन। वैज्ञानिक पहले कल्पना करता है। उसके बाद प्रयोग करता है। प्रयोग सफल व विफल होते हैं। और अन्त में एक निष्कर्ष निकलता है। कल्पनाशीलता से एक यथार्थ का जन्म होता है। कल्पनाशीलता को साहित्य का प्रमुख अंग माना गया है। वह साहित्यकार, साहित्यकार नहीं हो सकता, जो कल्पनाशील न हो, सहज भावुक न हो। यह कल्पनाशीलता पत्रकार के लिए भी जरूरी है। इस माने में पत्रकार का साहित्यकार होना जरूरी है। यह जरूरी नहीं है कि वह साहित्य का गहन अध्ययन किए हो, लेकिन सहज रूप में, यदि वह कल्पनाशील है, तो बहुत-सी कल्पनाएँ कर सकता है। समाचार के पीछे समाचार देख सकता है। एक समाचार के गर्भ में दूसरा कौन-सा समाचार है, यह वह देख सकता है। अगर वह कल्पनाशील नहीं है, तो नहीं देख सकता। एक कल्पनाशील पत्रकार ही कोई बात ऐसी कह सकता है, जो दस-बीस टिप्पणियों से नहीं कही जा सकती।

□ आपने अपनी पुस्तक 'सम्पूर्ण पत्रकारिता' में 'पत्रकारिता और साहित्य' शीर्षक एक अध्याय लिखा है। आखिर इसका आधार क्या है ?

हेरम्ब मिश्र—मैं उन लोगों में हूँ जो साहित्यकार न होते हुए भी ईमानदारी से और बड़ी बेचैनी से यह मानते हैं कि पत्रकार को साहित्यकार भी होना चाहिए। और अगर यह बात न होती तो मैं इस विषय पर पूरा एक चैप्टर न लिखता। पूरा अध्याय पढ़ जाने के बाद, आप यही निष्कर्ष निकालेंगे कि यह आदमी साहित्य के पक्ष में हैं और पत्रकार को साहित्यकार होना जरूरी समझता है। जबकि जो लोग स्वयं साहित्यकार नहीं हैं, साहित्य से बहुत दूर हैं, बड़े गर्व से कह देते हैं कि पत्रकार को साहित्यकार होना जरूरी नहीं है, क्योंकि एक मान्यता चली आ रही है—सारे विश्व में।

□ यदि किसी पत्रकार को अखबार के लिए बहुत बड़े साहित्यकार का इण्टरव्यू लेना हो जबकि वह साहित्य से बहुत दूर है, ऐसी स्थिति में वह अपना कार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पादन कैसे करेगा ? इस तरह की बात आपने अपने 'स्वभाव-साधना' वाले अध्याय में उठाई है। यहाँ पर आपका क्या दृष्टिकोण है ?

हेरम्ब मिश्र—'संवाददाता : सत्ता और महत्ता' के 'स्वभाव-साधना' अध्याय से ही और दूसरे अध्यायों से खास करके 'योग्यता' वाले अध्याय से यह स्पष्ट है कि साहित्य शून्य व्यक्ति को इन्टरव्यू के लिए भेजना ही नहीं चाहिए। अब रही इसी प्रसंग में 'स्वभाव-साधना' पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने की बात, सो कुछ विस्तार में सुनिये :—

मैं तो यह कहता हूँ कि जो पत्रकार नाम के व्यक्ति हैं या साहित्यकार नाम के व्यक्ति हैं, वे यों ही पत्रकार व साहित्यकार नहीं हैं। पत्रकारिता के लिए मैंने पढ़ा है और अनुभव किया है कि पत्रकारिता एक सहज प्रवृत्ति है, एक सहज उद्वेग है। पत्रकार के लिए कहा गया है कि उसमें एक समाचार-इन्द्रिय होती है। मैंने समाचार को ११वीं इन्द्रिय कहा है। वह इन्द्रिय जरूरी नहीं है कि हेरम्ब मिश्र या तथाकथित पत्रकारों में ही हो। वह इन्द्रिय आप में भी हो सकती है या किसी और में भी। एक समाचार हम पढ़ते हैं, सम्पादित करते हैं और शीर्षक देते हैं। लेकिन हमारा पाठक उसी प्रकाशित समाचार को पढ़कर मुँह बिचका लेता है और कहता है—'अरे, यहाँ तो असली समाचार यह होना चाहिए। यहाँ तो कुछ दिया ही नहीं गया है, व्यर्थ में मोटी-मोटी हेडिंग दे दी गयी है और वह भी बेतुकी है।' तो ऐसी स्थिति में निरुत्तर कर देता है—प्रबुद्ध पाठक। यहाँ पर वह समाचार इन्द्रिय हमारी अपेक्षा उस पाठक में ज्यादा सशक्त है। लेकिन पत्रकार जगत में जो प्रश्न उठा है, वह सीमित माने में जो साहित्य है– उसको लेकर। वैसे तो पत्रकारिता में कोई ऐसा विषय नहीं है, जो उसमें न आता हो। यदि गणित के किसी विषय को गणितज्ञ अखबार के लिए लिखेगा, तो वह तीन-चार पेज तक भूमिका ही लिखता जायेगा जबकि उसे सिर्फ एक कालम मिला है। उस गणितज्ञ के विचारों को एक सफल पत्रकार एक कालम में ही समेट देगा। यानी पत्रकार को 'गागर में सागर' भरने वाली कला में निपुण होना चाहिए। वह इस तरह भरेगा जिससे उस लेख का मुख्यांश न छूट पाये। पत्रकारिता की परिधि में हर विषय आता है। यह बात दूसरी है कि हर विषय के ज्ञाता हम पत्रकारों में नहीं है। लेकिन पत्रकारिता मात्र एक विषय नहीं है। एक वैज्ञानिक भाषण देकर चला जाता है— लोगों के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। एक अर्थशास्त्री भाषण देकर चला जाता है—लोगों के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। उसी भाषण को पत्रकार अच्छे ढंग से सम्पादित करके जब अखबार के माध्यम से लोगों के समक्ष प्रस्तुत करता है, तो बहुत से लोगों की समझ में आ जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

☐ समाज को पत्रकार व साहित्यकार किस रूप में देख रहा है तथा उसे किस रूप में देखना चाहिए ?

हेरम्ब मिश्र—समाज को देखने की कोई वैज्ञानिक दृष्टि बनी है क्या ? एक दृष्टि से पत्रकार देखता है, दूसरी दृष्टि से साहित्यकार देखता है और तीसरी दृष्टि से कोई तीसरा देखता है। अगर आप यही कहना चाहते हैं तो पत्रकार भी एक दृष्टि से नहीं देखता। जितने भी पत्रकार हैं, उतनी दृष्टि से देख रहे हैं। यह प्रश्न कुछ मेरी समझ से जमा नहीं। लेकिन इस तरह के सवाल उठते रहेंगे। पत्रकारिता की दृष्टि से पत्रकार कैसे देखता है ? यह भी एक प्रश्न हो सकता है।

☐ क्या पत्रकार पत्रकारिता से अलग होगा ?

हेरम्ब मिश्र—हम भी तो पत्रकार हैं। बिड़ला के नौकर हैं, डालमिया के नौकर हैं और गोयनका के नौकर हैं। कलम मेरी है और कालम उनका। वहाँ मेरी दृष्टि स्वतन्त्र कहाँ रह पाती है ? इसी के सन्दर्भ में अपनी पुस्तक—'पत्रकारिता : संकट व संत्रास' में मैंने एक अध्याय लिखा है। जितनी कुछ स्वतन्त्रता हमें मिली है, उसके सन्दर्भ में पूछिए तो एक कायदे का प्रश्न बनता है।

☐ यहाँ जो पत्र आते हैं या उपलब्ध हैं, वे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं हैं ?

हेरम्ब मिश्र-- कैसे हो सकते हैं ?

☐ इसके माने विचार व्यक्त करने के लिए पत्रकार स्वतन्त्र नहीं हैं ?

हेरम्ब मिश्र—बस सीमित अर्थों में वह स्वतन्त्र हैं। लेकिन हमें जो स्वतन्त्रता मिली है, उसका भी सदुपयोग हम ईमानदारी से नहीं कर पाते। अपनी ही सेवा करने लगते हैं।

☐ मैंने पत्रकार व साहित्यकार की समाज को देखने की दृष्टि के बारे में पूछा था ?

हेरम्ब मिश्र—समाज को देखने की दृष्टि कैसे बनती है ? यह मुख्य प्रश्न है। वह दृष्टि पत्रकार के पास भी हो सकती है और अन्य लोगों के पास भी, जो पत्रकार नहीं हैं। वर्तमान समाज सम्पूर्णतः है क्या ? इसे कोई ठीक से परिभाषित नहीं कर सका है। समाज माने क्या ? आदमी का समाज। आदमी विभाजित है। आज समाज विभाजित है। हम आपको लूट रहे हैं और आप हमको लूट रहे हैं। हम आपका दोहन, शोषण कर रहे हैं और आप मेरा। यह है—वर्तमान समाज। यह समाज हमारी आपकी तरह एक शोषित वर्ग की बिरादरी है। उसी तरह एक शोषक वर्ग की भी बिरादरी होगी। यहाँ पर समाज विभिन्न अंगों व वर्गों में बँटा है। इसे साम्यवाद या समाजवाद समझ कर मत देखिए। यह एक यथार्थ है। एक व्यक्ति है, जो एक रुपया पाता है और दूसरा व्यक्ति है, जो कुछ और पाता है। यहाँ पर कई हजार गुने रुपये का आर्थिक अन्तर है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह मैं स्वराज्य मिलने के बाद की बात कर रहा हूँ। इस समाज को सम्पूर्णतः देखने की दृष्टि— एक राष्ट्र, एक व्यक्ति, एक भाव द्वारा कैसे सम्भव है ? यहीं पर एक विचारक का यह सिद्धान्त सही मालूम पड़ता है। उसने कहा है— 'समाज कुछ मूलभूत आर्थिक नियमों से अनुशासित होता है।' (Society is governed by certain fundamental economic law's.)

यानी समाज आर्थिक नियमों से अनुशासित होता है। इस विभाजित समाज को आप पूंजीवादी समाज कहना चाहें या पूंजीवाद व सामन्तवाद की खिचड़ी समाज कहना चाहें या कुछ और कहना चाहें—कह सकते हैं। पत्रकार क्या कहें, इसकी ठेकेदारी मैं नहीं ले सकता। मैं कम्युनिस्ट रहा हूँ। मैंने कम्युनिस्ट साहित्य पढ़ा है। उसी साहित्य का एक बचा हुआ संस्कार कह लीजिए या प्रभाव, जिसको एक आधार मानकर मैं फिर कह रहा हूँ कि समाज विभाजित है और समाज पर पूंजीवाद और सामन्तवाद दोनों का जबर्दस्त प्रभाव चला आ रहा है। अगर केवल पूंजीवाद होता तो उसे मैं ज्यादा अच्छा समझता।

☐ इसके माने सामन्तवाद भी साथ-साथ चल रहा है ?

हेरम्ब मिश्र— सामन्तवाद जो है, वह आपको न तो पीछे रहने दे रहा है और न आगे ही बढ़ने दे रहा है और यह पूंजीवाद के हित में काम कर रहा है। इस चुनाव में कितने राजा-महाराजा निकल कर सामने आये। आखिर पूंजीवाद ने इनका साथ दिया, तभी तो ये लोग आगे आये। पूंजीवाद के मित्र की हैसियत से ये लोग सामन्तवाद की रक्षा के लिए नहीं गये बल्कि पूंजीवाद की रक्षा के लिए मित्र की हैसियत से गये।

☐ कहीं ऐसा न हो कि सामन्तवाद पुनः आ जाये ?

हेरम्ब मिश्र—नहीं, अब सामन्तवाद लौटकर नहीं आने वाला है। पूंजीवाद इतना होशियार है, जितने कि कम्युनिस्ट भी नहीं। सब हथकण्डे, कम्युनिस्टों के वह जान चुका है। लेकिन उनमें असंगतियाँ हैं। उन असंगतियों का सदुपयोग करने वाली क्रांति के पक्ष में कोई शक्ति नजर नहीं आती। फिलहाल सामन्तवाद लौटकर आनेवाला नहीं है।

☐ पत्रकारों की स्थिति आपने स्पष्ट नहीं की। आखिर समाज के प्रति उनका क्या दायित्व है ?

हेरम्ब मिश्र—बस, आप इतना समझिए कि मैं चाहता हूँ पत्रकारों की एक स्वतन्त्र निष्पक्ष दृष्टि बने। अगर कोई अपने को पत्रकार कहता है तो नेताओं की दृष्टि से तो कम से कम समाज को न देखे और अगर इतना वह कर लेता है तो नेताओं का नेता तो नहीं हो सकता, लेकिन अपने को एक स्वतन्त्र ढांचे में ढालने का बहुत कुछ श्रेय ले सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

☐ एक बात और उठती है कि कहीं ये सामन्तवादी व पूंजीवादी शक्तियाँ इस दृष्टि से देखने वाले पत्रकारों के लिए घातक न सिद्ध हों। आपका क्या ख्याल है ?

हेरम्ब मिश्र—क्यों नहीं ? हो ही रही हैं। हम लोग आज पैसे के फेर में दौड़ रहे हैं। पत्रकार, साहित्यकार सब उनके पीछे हैं। आज पुरस्कार पर पुरस्कार की घोषणा हो रही है जिसे समाज के बौद्धिक प्राणी को पाना है। आखिर यह पुरस्कार वही लोग तो दे रहे हैं इस प्रकार वे हम को भ्रष्ट कर ही रहे हैं !

☐ भारत में सबसे पहले 'रायटर्स' समाचार समिति की स्थापना हुई, उसके बाद और भी कई समाचार समितियाँ बनीं। करीब-करीब सभी पर विदेशी प्रभाव पड़ रहा है। ये समाचार समितियाँ भी तो पत्रकारों के लिए घातक सिद्ध हो सकती हैं ?

हेरम्ब मिश्र—अभी भी हमारी समाचार समितियाँ अन्तर्राष्ट्रीय मामले में 'रायटर्स' ही क्यों, अन्य विदेशी समितियों से भी प्रभावित हैं। प्रभावित ही नहीं बल्कि उन पर निर्भर भी हैं। 'रायटर्स' से तो हमारा सीधा सम्बन्ध है। और क्यों न हो ? यह तो तब हो सकता है जब हमारा सम्बन्ध साम्राज्यवादियों से बिल्कुल न रह जाय और यहाँ की एजेंसी वहाँ के पूंजीवाद से भी प्रभावित न हो।

☐ हम विदेशी समाचार समितियों से प्रभावित होते है—इसमें कम्युनिस्ट देश या पूंजीवादी देश, कौन ज्यादा प्रभावित करते हैं ?

हेरम्ब मिश्र—हमारी सोसाइटी है क्या ? नेताओं की बात छोड़िए। ऐसे तो लगत है, रूस से हमारे बड़े अच्छे सम्बन्ध हैं। बड़ा प्रभाव है। लेकिन बुनियादी तौरा पर आपके देश का स्वरूप व चरित्र क्या है ? जनता को राज्य का स्वरूप वर्ग से परे दिखलाई दे सकता है, लेकिन वस्तुतः वर्ग से परे हैं नहीं। इसी से प्रभाव की बात स्वयं समझ लीजिए।

☐ साहित्यकार के सृजन की भूमिका व पत्रकार के कर्तव्य व सृजन की भूमिका में आप किसको महत्वपूर्ण मानते हैं ?

हेरम्ब मिश्र—यह तो साहित्यकार व पत्रकार के महत्व पर निर्भर करता है। महत्व दोनों का है। उद्देश्य जब दोनों के एक हैं, तो सम्पूर्णतः पत्रकार व साहित्कार के लेखन में अन्तर नहीं होना चाहिए।

☐ अब यह अन्तिम प्रश्न मेरा इलाहाबाद के बारे में होगा। क्या यहाँ के साहित्य-कारों व पत्रकारों की कार्य-प्रक्रिया से संतुष्ट हैं ?

हेरम्ब मिश्र—बड़ा भयंकर प्रश्न मेरे लिए है ! देखिये, मैं काशी की मिट्टी में पैदा हुआ, इलाहाबाद मेरा कार्यक्षेत्र रहा है। २८ वर्षों से इलाहाबाद में ही रहकर पत्रकारिता पर मैंने तीन पुस्तकें लिखी। अन्ततः मैं साहित्यकारों की अपेक्षा यहाँ के पत्रकारों की वर्तमान दयनीय स्थिति से असंतुष्ट हूँ।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुस्तक समीक्षा

सूर्यनारायण भट्ट की नव प्रकाशित पुस्तक 'भारत : सामाजिक एवं राजनैतिक पथ'–(सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, ६९ नया बेरहना, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९८५, मूल्य साठ रुपये) में देश की 'आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों की गतिशीलता के परिप्रेक्ष्य में' अंग्रेजों के आने के समय से आज तक की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं, तथ्यों, सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों का बड़े ही तटस्थ भाव से तात्विक विश्लेषण करते हुए भारतीय समाज की विकास-प्रक्रिया को रेखांकित किया गया है साथ ही एक विशिष्ट दिशा देने का भी प्रयास है जिसमें भारत की वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक समस्या का निश्चित समाधान निहित है। लेखक की दृष्टि में भारत के वर्तमान स्वरूप, उसके सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक चरित्र को पूर्ण रूप से समझने के लिए विश्व भर की राजनीतिक गतिविधियों तथा उनके समाज पर पड़ रहे प्रभाव से परिचित होना आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक में मुख्यतया अंग्रेजों के आने के बाद से लेकर अब तक के विभिन्न राजनीतिक घटनाक्रमों का विवेचन करते हुए भारत की तत्कालीन सामाजिक स्थिति का विशद चित्रण है तथा हमारी जर्जरित होती हुई आर्थिक व्यवस्था को ही सामाजिक विषमता के मूल में दिखाया गया है। सामाजिक एकीकरण के लिए वे मुक्त सम्बन्धों की सर्वाधिक अपेक्षा रखते हैं क्योंकि समानता के मानवतावादी विचार को हमारी वर्तमान जातिगत एवं धर्मगत संकीर्णता कुण्ठित करती है।

भारत ने आजादी के बाद निश्चित रूप से औद्योगिक उन्नति की लेकिन उसी अनुपात में उसकी सामाजिक समस्याएँ भी बढ़ीं। इस सामाजिक विषमता की वृद्धि में जहाँ एक ओर विदेशी ताकतों का सक्रिय योगदान है वहीं दूसरी ओर हमारी अपनी दोषपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का भी। क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी तथा सामाजिक चिन्तकों के नेतृत्व में तथा देश के किसानों एवं अन्य मेहनतकशों के सक्रिय सहयोग से ही वर्तमान समाज में पनप रहे विषमता के वृक्ष को समूल नष्ट किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अत्यधिक गहन एवं गम्भीर विषय-वस्तु को विवेचित करते हुए भी लेखक ने सर्वत्र रोचकता बनाये रखी है जिससे पाठक एक बार पुस्तक उठाने पर आद्यान्त उसे पढ़कर ही छोड़ता है। भाषा में एक सहज प्रवाह है। यही इस पुस्तक का वैशिष्ट्य है जो इसे बोझिल और उबाऊ बनाने से रोकता है। राजनीतिशास्त्र के प्रकांड विद्वान प्रो० अम्बादत्त पंत ने भी इस पुस्तक के महत्व को स्वीकार किया है। 'हिन्दी में इस प्रकार के मौलिक ग्रंथों का जिनमें सूक्ष्म दृष्टि से भारत की सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं का विश्लेषण एवं विवेचन विद्वत्तापूर्ण ढङ्ग से किया गया हो लगभग अभाव-सा है। यह पुस्तक इस कमी को पूरा करती है।

—गिरिजा राय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(पृष्ठ ५ का शेष :)

उन्होंने काफी झख मारा था और काफी हाउस की खाक छानी थी। लेकिन इस शहर ने उनकी इस साहित्य-सेवा को कोई खास तवज्जह नहीं दी। अब जीवन में निश्चिन्तता और स्थायित्व आ जाने के बाद उन्हें साहित्यिक बुखार ने उत्पीड़ित कर दिया और वे सारे शहर की खाक छानकर गड़े मुर्दों को उखाड़ रहे हैं, पुराने सम्बन्धों को ताजा कर रहे हैं और इस तरह साहित्य से अपने सम्बन्धों का नवीनीकरण करा रहे हैं! एक दिन मिले, बड़े उत्साह में थे। कहा, बंधु! अब कुछ करने का समय आ गया है। सारे शहर में साहित्यिक जड़ता और निष्क्रियता छाई हुई है। इसको तोड़ना है और नई प्रतिभाओं को कुण्ठित होने से बचाना है। उन्हें अभिव्यक्ति का मंच देना है। मैंने डुग्गी बजाकर शहर की उपेक्षित प्रतिभाओं को अपने यहाँ बुलाकर सबको संगठित करने का संकल्प लिया है। मैंने उनके शुभ संकल्प की सराहना की। कुछ दिन बाद उनके आग्रह पर उनकी गोष्ठी में पहुँचा और देखा कि उसमें हर तरह के लोग इकट्ठे हैं जिनके चेहरों पर मार्क्सवाद, समाजवाद, गाँधीवाद, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नकाबें चिपकी हुई हैं। खुदा मेरे मित्र की खैर करें और उनका सपना (या छलना ?) कुछ ज्यादा दिन तक जीवित रहे!

४. न आने वाला कल और विज्ञापनों का आश्वासन

पत्रिका की आर्थिक व्यवस्था के लिए तरह-तरह के पापड़ बेलने पड़ते हैं। पीर, बावर्ची, भिश्ती, खर सब एक ही आदमी को बनना पड़ता है। किसी दूसरे से ज्यादा अपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी क्रम में एक मित्र की कृपा से कुछ साहित्य-प्रेमी अधिकारियों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी रचनाएँ सुनी, व्याख्यान सुना, आत्म-प्रशंसाएँ सुनी और वैभव-ऐश्वर्य का उन्मद प्रदर्शन देखा। पर एक चीज वहाँ लाख खोजने पर भी नहीं दिखाई दी और न तो उसकी चर्चा ही सुनने में आई। वह थी इन्सानियत। शायद सरकारी बूटों से रौंदी जाकर वह लाश में परिणत हो गई हो। वैसे लक्ष्मी-सरस्वती का वैर जगत्प्रसिद्ध है। फिर भी लक्ष्मी का आकर्षण जब तब सरस्वती को खींचकर अपमानित करता रहता है। सत्ता से दूर रहने की चाहना के बाद भी रचनाकार की खैर कहाँ? शायद इसी तरह की उल्टी-सीधी परि-स्थितियों में कुम्भनदास को दिल्ली दरबार का मुँह देखना पड़ा था। सत्ता की बेरुखी और बेहयाई का तथा इन्सानियत के अभाव और इस सारी भागदौड़ की निरर्थकता का अनुभव करते हुए वे बिलख पड़े थे: 'संतन को कहा सीकरी सो काम! आवत जात पन्हैया टूटी, बिसर गयो हरिनाम।''''जाके मुख देखत दुख लागे, ताको करन परी परनाम'। सो कुम्भनदास की भूलभुलैया में मैं भी आश्वासनों की भारी भरकम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पोटली सिर माथे लादकर कुछ दिनों तक भटकता रहा और इन्तजार किया कभी न आने वाले कल का !!

५. कविता के नये तांत्रिक आचार्य

मुद्दतों बाद काफी चिन्तन-मनन के उपरान्त डॉ० 'क' की पुस्तक छपकर बाजार में आई है। डॉ० 'क' एक कुशल वक्ता और सुमधुर गीतकार हैं। अपने शहर की छोटी-मोटी गोष्ठियों में उनकी स्वर-लहरियाँ वर्षों से धूम मचा रही हैं। लेकिन दुर्भाग्य से उनकी ख्याति ने अपने शहर की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं किया। अब कविता के (मूल) तत्वों का सारगर्भित (?) विवेचन करके उन्होंने यश और ख्याति की नई ऊँचाइयों का स्पर्श करने का दुस्साहस किया है। ठीक वैसे ही जैसे लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'नई कविता के प्रतिमान' या नामवर सिंह ने 'कविता के नये प्रतिमान' लिखकर किया। पर मुझे लगता है कि काव्य के आचार्य के रूप में केशवदास की परम्परा से अपने को जोड़ने की ललक भले ही डॉ० 'क' की न पूरी हो किन्तु जाने-अनजाने एक तांत्रिक आचार्य के रूप में उनकी ख्याति जनपद की सीमाओं को तोड़कर फैल गई है और लोग कुछ दहशत से, कुछ आतंक से और कुछ श्रद्धा से उनके नाम का प्रेमपूर्वक स्मरण करते हैं !

— बर्बरीक

(पृष्ठ ८ का शेष :)

जानता है। इसीलिए उसे उन अवधारणाओं तक पहुँचने में कठिनाई होती है, यद्यपि भाषा बेहद सरल है।

रामकमल राय : कविता में आकर आपकी भाषा बहुत ही Perfect होने लगती है। ऐसा कैसे सम्भव हो सका ? क्या ऐसा जीवन के साथ गहरे तादात्म्य के कारण हो सका है ? अथवा भाषा के प्रति अतिरिक्त जागरूकता के कारण ?

अज्ञेय : मैं भाषा को आत्यन्तिक महत्व देता हूँ और नहीं मानता कि बात किसी प्रकार कह दी जाये। मैं दोनों Propositions मानता हूँ अर्थात् जैसी बात कही गयी होती है वैसी ही भाषा होती है और जैसी भाषा होती है वैसी ही बात कही जाती है। कविता के क्षेत्र में मेरी निरन्तर तलाश रही है कि ऐसी भाषा, ऐसे शब्दों का प्रयोग कर सकूँ जिनका कोई विकल्प न हो। ऐसा हो सका है, ऐसा तो नहीं मानता। कमियाँ दीखती हैं, परन्तु प्रयत्न हमेशा वैसा ही रहा है।

रामकमल राय : आपने अपनी कविता में वृत्तों का सहारा नहीं लिया है। ऐसा क्यों ?

अज्ञेय : किसी भी भाषा के आधुनिक काव्य में वृत्तात्मकता की प्रवृत्ति नहीं है। प्रबन्ध काव्य का यह युग नहीं है। इस युग की संवेदना तो छोटी कविताओं के माध्यम से ही व्यक्त होती है।

रामकमल राय : यह बात हिन्दी में बहुत जोरों से कही जाती है कि अज्ञेय 'प्रसाद'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को बड़ा कवि नहीं मानते। क्या आप स्पष्ट करेंगे कि आपकी वास्तविक मान्यता 'प्रसाद' के विषय में क्या है?

अज्ञेय : 'प्रसाद' को मैं एक बड़ा कवि एवं साहित्यकार मानता हूँ। मेरी जो भी कठिनाई है, वह उनकी कृति 'कामायनी' को लेकर है। वास्तव में यह युग ही प्रबन्ध काव्य की संवेदना का युग नहीं है। न केवल 'कामायनी' के प्रति बल्कि गुप्त जी के 'साकेत' को लेकर भी मेरी मान्यता है कि जितनी सफल कृति 'यशोधरा' है उतनी 'साकेत' नहीं। उसी प्रकार 'आँसू' या 'लहर' की बहुत सी कविताएँ मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। थोड़ा-बहुत इतिवृत्तात्मक होते हुए भी 'पेशोला की स्मृति' या 'प्रलय की छाया' मुझे बहुत सफल रचनाएँ लगती हैं। यहाँ तक कि प्रसाद जी ने नाटकों में जो गीत लिखे हैं, केवल उन्हीं के आधार पर 'प्रसाद' एक अमर कवि ठहरते हैं। 'कामायनी' की संरचना एवं अन्विति को मैं सफल काव्य की अन्विति नहीं मान पाता। जहाँ-तहाँ सशक्त बिम्बविधान या अच्छा काव्य तत्व होने से ही किसी प्रबन्ध-काव्य को एक महान या सफल कृति नहीं माना जा सकता।

रामकमल राय : आपने 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' की पूरी धनराशि का उपयोग 'वत्सल-निधि' की स्थापना में किया है। बहुत से लोगों की आशंकाएँ ऐसे ट्रस्टों को लेकर रहती हैं कि इनका दुरुपयोग होता है। क्या आपको विश्वास है कि इस निधि का उपयोग वांछित दिशा में ही होगा?

अज्ञेय : मेरी प्रारम्भ से ही यह मान्यता रही है कि लेखक को स्वयं साहित्यकार की प्रतिष्ठा या उसकी अस्मिता की रक्षा के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इस दिशा में असफलता भी मिले तो भी लगातार प्रयत्न करना चाहिए। साहित्यकार के स्वाभिमान एवं अस्मिता के लिए यह एकमात्र रास्ता है। सरकार की सदाशयता के नाम पर जो दबाव और चाटुकारिता का वातावरण बनाया गया है अथवा पूँजीपतियों के आक्रामक Patronage ने जो स्थितियाँ उत्पन्न की हैं, उनसे बचने का एकमात्र रास्ता तो यही है कि साहित्यकार स्वयं अपना मार्ग बनाये। यह तो उचित नहीं है कि हम मानें कि चूँकि इस दिशा में प्रयत्न असफल हुए हैं, इसीलिए आगे प्रयत्न नहीं किया जाये। आखिर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' या 'काशी नगरी प्रचारिणी सभा' की आज जो भी स्थिति हो, परन्तु इन्होंने एक लम्बे अर्से तक जो महत्वपूर्ण कार्य किया है, उसे कौन इन्कार कर सकता है? इसी उद्देश्य से 'वत्सल निधि' की स्थापना की गई और स्थापना से लेकर लगातार यही प्रयास है कि इसके माध्यम से ठोस साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक गतिविधियाँ सम्पन्न की जायें।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Phone : 50212
Res : 51021

M/s : LUXMI TRAVELS

(Available; Luxmi Busses all Over India For Sight Seeing Picnic and for going out Station.)

Branch Office :
6, Jawahar Lal Nehru Road,
Allahabad.

Head Office :
35, Zero Road,
Allahabad.

M/s : Aar Kay Electronics

(Manufacturer : Ringer Assembly for Telephone.)

—32, Monereco Industrial Estate,
Teliarganj, Allahabad.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर महापालिका, इलाहाबाद

स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर नागरिकों से अपेक्षा है कि :—

यह नगर आपका है। इसे स्वच्छ एवं सुन्दर रखने में सहयोग दें। कृपया ध्यान रखें :—

१— अपने घर का कूड़ा सड़क पर न फेंकें, उसे स्थान-स्थान पर रखे कूड़े के पात्रों में ही फेंकें।

२—सड़कों तथा पटरियों पर अतिक्रमण न करें।

३—मुख्य मार्गों तथा बाजार के बीच में चार पहिये के ठेले न खड़ा करें।

४—पशुओं को सड़कों पर खुला न छोड़ें।

५—पार्कों तथा सार्वजनिक स्थानों को स्वच्छ रखें।

६—चुङ्गी अदा करके ही अपने सामानों को लायें।

७—गृहकर एवं जलकर समय से जमा कर दें।

८—सड़क पर लगे बिजली के सामानों की रक्षा करें।

एस० पी० दुबे	आर० सी० शर्मा	जे० एन० द्विवेदी
सहायक नगर अधिकारी	उप-प्रशासक	प्रशासक

कार्यालय सहायक नगर अधिकारी—जनसम्पर्क, नगर महापालिका, इलाहाबाद द्वारा प्रसारित।

नारी वस्त्रम्

वैवाहिक साड़ियाँ, सिन्थैटिक साड़ियाँ, बंगाली साड़ियाँ व सूती साड़ियाँ खरीदने के लिए एक बार अवश्य पधारें।

—७३८, पुराना कटरा, इलाहाबाद

बहूरानी

(साड़ियाँ, रूबिया, पापलीन व थान के थोक व फुटकर विक्रेता।)

—४९६, कटरा, इलाहाबाद (विशनलाल भार्गव स्टेशनर्स के सामने।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

की प्रकाश्यमान,

अमृत महोत्सव स्मारिका :

स्मारिका की एक झलक :

- ☐ हिन्दी आन्दोलन के इतिहास पर विशेष लेख,
- ☐ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इतिहास का विहंगावलोकन
- ☐ समकालीन हिन्दी की (कविता, कहानी आदि) विधाओं पर अधिकारी विद्वानों के विचार
- ☐ भारतीय भाषाओं की वर्तमान प्रवृत्तियों और उपलब्धियों की निदेशक सामग्री।
- ☐ देश-विदेश में हिन्दी की प्रगति की प्रामाणिक सूचनाएं।

सम्पर्क-सूत्र : प्रभात शास्त्री, (प्रधान मन्त्री)
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद।

फोन—५४१६५

कानपुर यूनिवर्सिटी

में

निश्चित सफलता के लिए

यूनिवर्सिटी

(सिरीज)

९० क्वेश्चन्स ही पढ़ें।

एकमात्र वितरक : इलाहाबाद–कानपुर बुक सेन्टर
प्राप्ति स्थान : कानपुर बुक हाउस
३९, लीडर रोड, इलाहाबाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाठकों से अपील

(राष्ट्रभाषा हिन्दी के हितों को ध्यान में रखते हुए साहित्यिक विकास के लिए स्वयं सदस्य बनें व दूसरों को बनाने के लिए प्रेरित करें।)

प्रिय महोदय / महोदया,

सप्रेम नमस्कार

समाज में आदर्शों एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा स्वस्थ साहित्यिक रुचि उत्पन्न करने के संकल्प के साथ 'अनुगमन' (हिन्दी त्रैमासिकी) का प्रकाशन अप्रैल १९८१ ई० से निरन्तर हो रहा है। सरकारी उदासीनता तथा व्यावसायिक पत्रिकाओं की साधन-सम्पन्नता के आगे यह पत्रिका अर्थ-संकट के दौर से गुजर रही है। व्यापक जन-सहयोग से ही हमें अपने उद्देश्य में सफलता मिल सकती है।

पत्रिका के सहृदय लेखक/पाठक होने के नाते आपसे विनम्र अनुरोध है कि 'अनुगमन' को सबल व सशक्त बनाने के लिए तथा उसकी आवाज आम आदमी तक पहुँचाने के लिए अपना बहुमूल्य समय और सहयोग स्वयं ग्राहक बनकर दें तथा यदि सम्भव हो सके तो अधिकाधिक संख्या में दूसरों को भी ग्राहक बनवाने का प्रयत्न करें। अपने सहयोग की सूचना कार्यालय को अवश्य दें।

सधन्यवाद,

निवेदक :

सम्पादक— 'अनुगमन'

(विशेष—१—आजीवन सदस्यता शुल्क—१५०/-, ५ वर्ष—५५/- व वार्षिक सदस्यता शुल्क—१२/-, नये आजीवन ग्राहकों को 'अनुगमन' के पिछले सारे अंक तथा 'अनुगमन' द्वारा प्रकाशित साहित्य निःशुल्क प्राप्त होंगे। केवल डाक खर्च देय होगा।

२—विदेशों के लिए (आजीवन)—५०० रुपये मात्र।

३—ड्राफ्ट 'अनुगमन' के नाम से भेजें।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

M/S : RAM BILAS HARI BAKASH

(Yarn Merchant Commission Agent & Banker's)

—363, Bharti Bhawan,
Allahabad 211003.

Telephones :
O : 245191
Re : 245988

M/s : CHANDAK BROTHER'S

MANUFACTURERS ☐ ENGINEERES ☐ SUPPLIERS.

(Textiles Machinery and Spare Parts, Packing Materials. Chemicals and Government General Order Suppliers)

Workshop :
122/425, Shastri Nagar,
Kanpur –5.

– Janki Niwas·
87/11, Acharya Nagar,
Kanpur— 3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(भारत सरकार के रजिस्ट्रार न्यूज पेपर कार्यालय दिल्ली से 'अनुगमन' पंजीकृत है।) क्रम सं० ४०।३।८१ एन. टी. ॥ मूल्य ३ रु०

वर्ष : ५, अंक-३ पूर्ण संख्या : १८ (जुलाई-सितम्बर १९८५)

मुद्रक, प्रकाशक-श्रीमती सरला द्विवेदी, १०८/३ -मीरापुर इलाहाबाद (उ०प्र०) द्वारा प्रकाशित एवं इन्हीं के लिए माधो प्रिंटिंग वर्क्स, २४२, पुराना बैरहना इलाहाबाद (उ०प्र०) में मुद्रित —

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.